निर्ग्रन्थ भजनावली

संग्रहकर्त्ता :

श्रीमज्जैनाचार्य श्री हस्तिमल्ल जी महाराज सा० के सुशिष्य

मुनिश्री श्रीचन्दजी महाराज

सम्पादक :

गजसिंह राठौड़

प्रेमराज बोगावत

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर–३०२००३

•

द्वितीय संस्करण : ११०० (परिवर्तित एवं परिवर्द्धित)

•

श्रावण शुदि ५, संवत् २०३७

दिनांक १५ अगस्त, १९८०

•

मूल्य : १२) रुपये

•

मुद्रक :

पॉपुलर प्रिन्टर्स

त्रिपोलिया बाजार,

जयपुर–३०२००३

प्रकाशकीय

वैसे तो जैन जगत् के आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रभु भजन स्तवन स्तुति मंगल आदि के लिये अनेकों प्रकाशन विभिन्न संस्थानों द्वारा प्रचलित हुए हैं एवं दिनों दिन हो रहे हैं। इनमें कई पुस्तकाकार हैं, कई गुटका के आकार में हैं। सबों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं।

इन सब प्रकाशनों को देखते हुए मण्डल की यह इच्छा हुई कि कोई ऐसा प्रकाशन भी किया जाय जो बहुत बड़ा भी न हो पर उसमें स्वाध्याय के निमित्त कुछ शास्त्रीय सामग्री भी सम्मिलित हो, जो भी महत्त्वपूर्ण प्राकृत एवं संस्कृत के स्तोत्र एवं स्तुति पाठादि हैं उनका सरल हिन्दी अनुवाद भी साथ में हो ताकि अधिसंख्य साधक, जो संस्कृत प्राकृत भाषा के जानकार नहीं हैं, वे भी उन पाठों का अर्थ समझ जाएं एवं जीवन की अन्तिम समाधि क्रिया आदि से सम्बन्धित अधिकारी स्तर की जानकारी भी मुमुक्षुओं को आसानी से उपलब्ध हो। इस दिशा में पूज्य गुरुदेव श्रीमज्जैनाचार्य श्री हस्तिमलजी महाराज साहब के तपोनिष्ठ सुयोग्य सन्त श्री श्रीचन्दजी महाराज सा० की रुचि ने हमारा मार्गदर्शन किया एवं स्थानकवासी जैन परम्परा के जाने माने ऐतिहासज्ञ विद्वज्जन एवं संस्कृत-प्राकृत भाषा के विशेषज्ञ सर्वश्री गजसिंहजी राठौड़ एवं प्रेमराजजी बोगावत का सहयोग भी हमें अनायास मिल गया। जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत "निर्ग्रन्थ भजनावली" कुछ वर्ष पूर्व पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में हम समर्थ हुए। जैन जगत् के आध्यात्मिक क्षेत्र में हमारे इस प्रकाशन का यथेष्ट स्वागत हुआ। परिणामस्वरूप यह द्वितीयावृत्ति पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है। आशा है साधक वृन्द इसका भी उसी उत्साह से स्वागत करेंगे एवं इसका पूरा-पूरा लाभ उठाएंगे।

उमरावमल ढड्ढा — अध्यक्ष

श्रीचन्द गोलेछा — मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

सम्पादकीय

अनन्त काल से संसार सागर में गोते खाता पग-पग पर समस्या व समाधान के चक्र में पिसता मनुष्य बराबर विचार करता आ रहा है कि उसके इस मनुज देह धारण करने का वास्तव में क्या प्रयोजन है और इसका समाधान भी उसे मुख्य रूप से दो प्रकार का मिलता आ रहा है।

एक दार्शनिक ने कहा कि खाओ, पीओ और मौज करो (यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः)। इसके पक्ष में इतनी युक्तियां प्रयुक्तियां दी गईं कि इस देश के मनीषियों को इसे भी एक दर्शन कहकर पुकारना पड़ा। यही समाधान कुछ विकृत रूप में आज पाश्चात्य संस्कृति प्रमुख रूप से दे रही है और इसीसे लुभायमान होकर आज इस निवृत्तिमूलक-संस्कृति-प्रधान देश का युवक-वर्ग भी उक्त भोग-विलास-प्रधान संस्कृति में आकंठ डूबता जा रहा है।

पर यह समाधान भारतीय आत्मतत्ववेत्ताओं, मनीषियों एवं आप्त पुरुषों को कभी मान्य नहीं हुआ। उन्होंने स्पष्ट एवं निर्विवाद शब्दों में लगातार इसका यही समाधान दिया कि—'पुव्वकम्मक्खयट्ठाए इमं देहं समुद्धरे', (पूर्व कर्मक्षयार्थ इमं देहं समुद्धरेत्) अर्थात् पूर्व जन्मों के उपार्जित कर्मों को क्षय करने के लिये इस देह को मनुज धारण करे। मानव देह धारण का यही एक प्रयोजन उन्हें मान्य है। अन्य सब प्रयोजन उनकी दृष्टि में व्यर्थ हैं।

जिस तरह से इस धरती पर पाप-पुण्य, सत्कर्म-दुष्कर्म, सद्-असद् अनादि काल से विद्यमान हैं वैसे ही दो रूपों में यह समाधान भी विद्यमान है। भारतीय दर्शन को, जिसमें जैन दर्शन का भी बहुत बड़ा योगदान है, यह दूसरा समाधान ही स्वीकार्य है।

मुमुक्षुजन के समक्ष पुनः प्रश्न उठता है कि पूर्व जन्मों में संचित कर्मों को कैसे क्षय किया जाय और कैसे यह संसार सागर पार किया जाय। बहुत थोड़े और नपे तुले शब्दों में इसका भी समाधान इस देश के वीतराग आप्त पुरुषों ने दिया है :—

जम्मणमरणजलोघं दुखयरकिलेससोगवीचीयं ।
इय संसार समुद्द' तरंति चउरंगणावाए ।।

अर्थात् यह संसार समुद्र जन्म-मरण रूप जल प्रवाह वाला, दुःख क्लेष एवं शोक रूपी तरंगों वाला है। इसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और सम्यग्तप रूप चतुरंग नाव द्वारा मुमुक्षुजन पार करते हैं।

यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप कैसे प्राप्त किया जाय इसके अनेकानेक मार्ग सफल साधकों ने बताये हैं। कुछ लम्बे, कुछ छोटे, कुछ सरल, कुछ दुरुह। सामान्यजनों के लिये प्रभु महावीर से शिष्यों ने पूछा कि भगवन् ! उनके लिये सबसे सुगम मार्ग कौनसा है ? प्रभु ने बड़ा सुन्दर समाधान दिया कि अगर सामान्यजन की सामर्थ्य नहीं है उग्र और छोटा मार्ग पकड़ने की तो वे प्रभु भजन स्तवन कीर्त्तन में अपने को लगाएं। शिष्यों ने फिर पूछा कि भगवन् ! इसका क्या फल होगा। प्रभु ने इसका भी सीधा-सा संक्षिप्त उत्तर दे दिया :—

"थव थुई मंगलेणं नाण दंसण चरित्त बोहिलाभं जणयइ
नाण दंसण चरित्त बोहि लाभ सम्पण्णे य णं जीवे
अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तयं आराहणं आराहेइ।"

अर्थात् प्रभु भजन स्तवन स्तुति मंगल आदि करने से ज्ञान-दर्शन चारित्र रूप बोधिलाभ की प्राप्ति होती है। ऐसा बोधिलब्ध जीव या तो उसी भव में मोक्ष पाता है या कल्प विमान में उत्पन्न होकर आराधक होता है और थोड़े भवों में ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

साधारण से साधारण मुमुक्षु भी इस लक्ष्य को प्राप्त कर सके इस निमित्त प्रभु भजन स्तवन, स्तुति मंगल एवं स्वाध्याय योग्य शास्त्रों की कुछ सरल गाथाओं का संग्रह इस "निर्ग्रन्थ भजनावली" के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। साधकों की रुचि को और सुझावों को ध्यान में रखकर इस संस्करण में काफी परिवर्तन और परिवर्द्धन भी किया गया है। अनेकों प्राकृत और संस्कृत भाषा के पाठों का हिन्दी अनुवाद देकर सामान्यजनों के लिये इसे बोधगम्य बनाया गया है।

आशा है जिज्ञासु साधकवृन्द इन आगमपाठों को एवं अन्य अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल स्तवनों और स्तोत्रों को यथा सम्भव कंठस्थ करके शुद्ध अन्तःकरण पूर्वक इनका शुद्ध उच्चारण एवं उदात्त स्वर में एकाग्रचित्त होकर पठन-पाठन एवं मनन करेंगे तो निश्चय ही वे एक अनुपम आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति एवं बोधिलाभ प्राप्त करेंगे।

गजसिंह राठौड़
प्रेमराज बोगावत

बोधिरत्नम्
सी ११, मोती मार्ग,
बापूनगर, जयपुर–३०२००४
फोन : ६१६२६

अनुक्रम

क्रम संख्या विषय पृष्ठ

मंगलसूत्र

(१)

१. णमो अरिहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

अर्हन्तों को नमस्कार । सिद्धों को नमस्कार । आचार्यों को नमस्कार ।
उपाध्यायों को नमस्कार । लोकवर्ती सब साधुओं को नमस्कार ।

२. एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।

यह पंच नमस्कार मन्त्र सब पापों का नाश करने वाला है और समस्त मंगलों में प्रथम मंगल है ।

३. चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं । साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

४. चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

५. चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि । सिद्धे सरणं पव्वज्जामि । साहू सरणं पव्वज्जामि । केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

ॐ

दशवैकालिक सूत्र

(२)

प्रथम–अध्ययन

१. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।

२. जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।।

३. एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ।।

४. वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ।।

५. महुगार समा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो–त्ति बेमि ।

द्वितीय–अध्ययन

१. कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ ।।

२. वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से 'चाइ' त्ति वुच्चइ ।।

ॐ

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

(श्रुतकेवली श्री शय्यंभव स्वामि विरचित)

दशवैकालिक सूत्र

(हिन्दी भावार्थ)

१. धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा–संयम–तपोमय जो ।
देव भी उसको नमन करते धर्म में जिसका सदा मन हो ।।

२. जैसे तरुवर के पुष्पों से भ्रमर रस पी जाता है ।
पुष्पों को पीड़ा नहीं देता, स्वयं तृप्त हो लेता है ।।

३. इसी तरह ये श्रमण कहाते, जो लोक में हैं साधु सुगुण ।
पुष्पों से जैसे भ्रमर रस लेते, वैसे परदत्त अन्न वे करते मार्गण ।।

४. हम अपनाएंगे वृत्ति वही, जिसमें न किसी को हो पीड़ा ।
सहज बनाये भोजन में, मधुकर सम करते हैं क्रीड़ा ।।

५. मधुकर सम प्रबुद्ध बुद्ध, आश्रय त्यागी जो होते हैं ।
नाना विध पिण्डों में रत रह, शांत दांत साधु वे कहलाते हैं ।।
—यह मैं कहता हूं ।

१. वह श्रमण धर्म कैसे पाले, जो काम त्याग नहीं करता है ।
पद पद पर पाता है विषाद, संकल्पों के वश जो रहता है ।।

२. जो वस्त्र गंध और आभूषण, प्रमदा अरु शयन आसन ।
परवश हो भोग नहीं सकता, 'त्यागी' न उसे कहते हैं जिन ।।

३. जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु 'चाइ' त्ति वुच्चइ ।।

४. समाए पेहाए परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा महं नोवि अहंपि तीसे इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ।।

५. आयावयाही चय सोउमल्लं, कामेकमाही कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ।।

६. पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ।।

७. धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।

८. अहं च भोगरायस्स, तं चासि अंधगवण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ।।

९. जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धोव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ।।

१०. तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ।।

११. एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसोत्तमो-त्ति बेमि ।

तृतीय-अध्ययन

१. संजमे सुट्ठिअप्पाणं विप्पमुक्काण ताइणं ।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गंथाणं महेसिणं ।।

३. पर उन कान्त प्रिय भोगों को, पाकर भी जो ठुकरा देता ।
स्व अधीन भोग का त्याग करे, त्यागी जग में वही कहलाता ।।

४. समतापूर्वक विचरण करते, यदि चित्त श्रमण का विचलित हो ।
ना वह मेरी, ना मैं उसका, यों सोच राग से उपरत हो ।।

५. कोमलता तज, कर आतापन, छोड़ काम, होगा दुख दूर ।
काटो द्वेष, राग को तज दो, इससे सुख होगा भरपूर ।।

६. धूम्र शिखा सी जलती ज्वाला में, कर लेता है सहर्ष प्रवेश ।
किन्तु न पीता सर्प अगन्धन, वान्त गरल सह के भी क्लेश ।।

७. धिक्कार तुम्हें अपयशकामी !, जो दूषित जीवन चाहते जीना ।
वमन किये को पीना चाहते, इससे श्रेष्ठ है तुम्हें मर जाना ।।

८. मैं हूं भोगराज की पुत्री, तुम अंधक वृष्णि कुल प्रसूत ।
होना न हमें है गन्धन सम, पालन कर संयम बन शुभ पूत ।।

९. जहां तहां देख नारी तन को, मन में विकार तुम लाओगे ।
तो पवन प्रचालित हरित तुल्य, अस्थिर चित्त बन जाओगे ।।

१०. हितकर वचन सुन वे सब उस संयमी सुभाषिता के ।
अंकुश से हस्ति वश हो त्यों धर्म में पुनः सुस्थित हुए वे ।।

११. ऐसा ही करते विबुध प्रवर, पंडित और विचक्षण बन ।
भोगों से विरत हो जाते, हुए जैसे वे उत्तम जन ।।
—यह मैं कहता हूं ।

१. संयम में स्थित आत्मावाले, विप्रमुक्त और त्रायी के ।
उन निर्ग्रन्थ परम ऋषियों के, हैं वर्णन अनाचीर्ण पथ के ।।

२. उद्देसियं कीयगडं, नियागं अभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गंध मल्ले य वीयणे ।।

३. सन्निही गिही-मत्ते य, रार्यापंडे किमिच्छए ।
संवाहणा दंत पहोयणा य, संपुच्छणा देह-पलोयणा य ।।

४. अट्ठावए य नाली य, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो ।।

५. सेज्जायर-पिण्डं च, आसंदी पलियंकए ।
गिहंतर निसज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ।।

६. गिहिणो वेआवडियं, जाय आजीव वत्तिया ।
तत्ता निव्वुड भोइत्तं, आउरस्सरणाणि य ।।

७. मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अनिव्वुडे ।
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ।।

८. सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमा-लोणे य आमए ।
सामुद्दे पंसुखारे य, काला-लोणे य आमए ।।

९. धूवणे त्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे ।
अंजणे दंतवणे य, गायब्भंग विभसणे ।।

२. औद्देशिक[1] कृतक्रीत[2] नियाग[3], अभ्याहृत[4] एवं निशा-अशन ।
स्नान गंध माला धारण, सुख हेतु व्यजन का संचालन ।।

३. संनिधि[5] गृहस्थ पात्र में भक्षण, राजन्य पिण्ड और क्षेत्र-अशन ।
संवाहन[6] और दंत शोधन, संप्रच्छन्न[7] निज देहालोकन ।।

४. नाली[8] से अष्टापद क्रीड़न[9], मुट्ठी से छत्र ग्रहण करना ।
चैकित्स्य उपानह् का धारण, पावक का संज्वालन करना ।।

५. शय्यातर का पिण्ड और, वेत्रासन सुख पर्यंक-ग्रहण ।
बैठना गृहस्थ घर में जाकर, करना शरीर का उद्वर्तन ।।

६. करना गृहस्थ जन की सेवा, और जाति वता भिक्षा अर्जन ।
अर्द्ध पक्व सेवन करना, या रोगावस्था में क्रन्दन ।।

७. मूला सिंगवेर-सेवन[10], और इक्षुखण्ड जो ग्रहण करे ।
शूरण आदि सजीव मूल फल, तथा बीज का अशन करे ।।

८. सौवर्चल[11] सैन्धव और रुमा, सागर से निकले तथा लवण ।
ऊपर और काले लवणों का, मुनि करे सचित्त का है वर्जन ।।

९. रोग शान्ति हित धूप वमन, और वस्ति विरेचन का सेवन ।
अंजन और दांतों का रंगना, अभ्यंग तेल से तन-मर्दन ।।

---

१. साधु के निमित्त बनाया आहार २. साधु के लिए खरीदा आहार ३. निमन्त्रण से प्राप्त आहार ४. सामने लाकर दिया आहार ५. रात्रि में आहारादि का संचय ६. शरीर की मालिश ७. गृहस्थ से कुशल पूछना ८. जुए के साधन ९. चौपड़ शतरंज आदि खेलना १०. अदरख ११. संचर नमक ।

१०. सव्वमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमम्मि अ जुत्ताणं, लहुभूय विहारिणं ॥

११. पंचासव परिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंच निग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो ॥

१२. आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥

१३. परिसह-रिऊदंता, धूअमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥

१४. दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य ।
केइऽत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया ॥

१५. खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिणिव्वुडा-त्ति बेमि ।

चतुर्थ-अध्ययन

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं—समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया—सुअक्खाया सुपण्णत्ता । सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ।

१०. इतने हैं ये अनाचीर्ण[1] पथ निर्ग्रन्थ श्रमण अति उत्तम के ।
संयम पथ में जो जुड़े हुये, लघुरूप विहारी जीवन के ॥

११. पंचास्त्रव के परित्यागी, त्रिगुप्त जीव षट् पर-संयत ।
पंचेन्द्रिय जयी धैर्यधारी, निर्ग्रन्थ मोक्ष पथ नयन निहित ॥

१२. लेते आतापन गर्मी में, सर्दी में वस्त्र रहित रहते ।
संयत और समाहित मुनि[2], वर्षा में कच्छपवत् रहते ॥

१३. परिषह शत्रु का दमन करे, मोह त्यागी इन्द्रिय के विजयी ।
जो सभी दुःखों से मुक्ति हेतु, उद्यत रहते मुनि परमजयी ॥

१४. दुष्कर संयम का साधन कर, दुस्सह पीड़ाओं को सहकर ।
हैं जाते कई यहां से सुरपुर, एवं सिद्ध कई नीरज बनकर ॥

१५. संयम और तपस्या से, पूर्वार्जित कर्मों का क्षय कर ।
सिद्धि मार्ग को प्राप्त हुए, त्रायी[3] मुनि पूर्ण अमर बनकर ॥

१. सुना शिष्य ! मैंने इन प्रभु से, कैसा तारक कहा वचन ।
निश्चय ही इस प्रवचन में, छ जीवनिकायों का वर्णन ॥

जो काश्यपवंशी श्रमण वीर ने, भलीभांति बतलाया है ।
वह श्रेय धर्म-प्रज्ञप्ति मुझे, पढ़ने में मन को भाया है ॥

२. कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं-समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया-सुअक्खाया— सुपण्णत्ता । सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ।

३. इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं-समणेणं— भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया—सुअक्खाया सुपण्णत्ता । सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ।

तं जहा-पुढ़वि-काइया १, आउ-काइया २, तेउ-काइया ३, वाउ-काइया ४, वणस्सइ-काइया ५, तस काइया ६ ।

पुढ़वी चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ।।१।।

आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ।।२।।

तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ।।३।।

वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ।।४।।

वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं । तं जहा-अग्गवीया मूलवीया

२. षट्जीव निकाय नामवाला, अध्ययन कौन जो यहां कहा ?
भगवान् वीर उस काश्यप ने, समझाया जिसका मर्म महा ।।
अध्ययन धर्म प्रज्ञप्तिरूप, है प्रभु ने कथन किया जिसका ।
है श्रेयस्कर मेरे हित में, मनोयोग से पढ़ना उसका ।।

३. निश्चय षट्जीव निकायरूप, यह वर्णन सुखद मनोरम है ।
उस श्रमणवीर प्रभु काश्यप ने, है कहा जिसे अति उत्तम है ।।
जिसको सम्यक् है बतलाया, एवं आख्यान किया जिसका ।
अध्ययन धर्म प्रज्ञप्ति सदा, क्षेमंकर है जन-जीवन का ।।

पृथ्वीकायिक जलकायिक, तेजस्कायिक भी जीव यहां ।
हैं वायु वनस्पतिकायिक फिर, त्रसकायिक ऐसे भेद जहां ।।

पृथ्वी को सचित्त बतलाया, हैं जीव पृथक् सत्ता-वाले ।
अगणित जीव, शस्त्र परिणित तज, सबके सब जीवन वाले ।।१।।

अप्कायिक भी जीव सहित हैं, पहले जैसे लक्षण वाले ।
वे ही अचित्त हैं जो हो जाते, शस्त्रों से आहत तन वाले ।।२।।

तेजस् या वायु वनस्पति के. भी विविध जीव बतलाये हैं ।
वे जीव सहित, शस्त्रों से आहत को तजकर, कहलाये हैं ।।३-५।।

जो जीव वनस्पति कायिक हैं, उनके ये भेद निराले हैं ।
कुछ अग्रबीज कुछ मूलबीज, कुछ पर्वबीज तन वाले हैं ।।

पोरबीया खंधबीया बीयरुहा—सम्मुच्छिमो तणलया—वणस्सइकाइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढ़ो सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं ।।५।।

से जे पुण इमे अणेगे बह्वे तसा पाणा-तं जहा-अंडया पोयया जराउया रसया-संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया जेसिं केसिं च पाणाणं—अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं-रुयं भंतं तसियं पलाइयं-आगइ-गइ-विन्नाया, जे य कीड पयंगा जा य कुंथुपिवीलिया सव्वे वेइंदिया, सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे पंचिंदिया सव्वे तिरिक्ख जोणिया सव्वे नेरइया सव्वे मणुआ सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छट्ठो जीव निकाओ 'तसकाउ त्ति' पवुच्चइ ।।६।।

इच्चेसिं छण्हं जीव निकायाणं—नेव सयं दंडं समारंभिज्जा-नेवन्नेहिं दंडं समारंभाविज्जा—दंडं समारंभंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं-मणेणं, वायाए—काएणं न करेमि, न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि—अप्पाणं वोसिरामि ।।७।।

कुछ स्कन्ध वीज कुछ वीजरुहा, संमूर्च्छिम और तृणादिकाय ।
ये हैं सचित्त और वीजयुक्त, शस्त्रों से परिणित यदि हो न काय ।।५।।
ये जो अनेक चलने वाले, जगती में त्रस कहलाते हैं ।
अंडज, पोतज, रसज, जरायुज, स्वेदज प्राणी होते हैं ।।
संमूर्च्छिम, उद्भिज्, उपपातिक, जिनके चेष्टा है जीवन में ।
ज्ञातृ अपेक्षा से कितनी, होती हैं काय क्रिया इनमें ।।

सम्मुख आना पीछे जाना, संकोचन अंगों का करना ।
निज हाथ पांव को फैलाना, रुदन और भ्रमण ऐच्छिक करना ।।
होना उद्विग्न भयादि देख, स्वस्थान छोड़कर भग जाना ।
यों इनके गमनागमनों से, सिद्ध इन्हें प्राणी कहना ।।
सब कीट पतंगे जो प्राणी फिर, कुंथु पिपीलिका तनवाले ।
हैं दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय सब, चतुरिन्द्रिय पंच-इन्द्रिय वाले ।।
तिर्यक् योनिज और नारक भी, नर और देवगण भी सारे ।
सबमें है प्राण परमधर्मी, ये षट्निकाय त्रस तनवाले ।।६।।

ऐसे षट्कायिक जीवों को, हम दण्ड नहीं दें हित मानें ।
फिर नहीं दिलायें पर से भी, देते को भला नहीं जानें ।।
हिंसा वर्जन जीवन भर, हमको करना है तन मन से ।
नहीं करें ना करवायें, करते को शुभ न कहें मन से ।।
ऐसे दण्डों से, हे गुरुवर ! मैं दूर स्वयं अब होता हूं ।
निन्दा गर्हा करके इनका, त्याग हृदय से करता हूं ।।७।।

पढ़मं भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे अइवाइज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा, पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ॥८॥

अहावरे दोच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ— वेरमणं, सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि, से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंते— वि अन्ने न समणुजाणिज्जा ! जावज्जीवाए— तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दोच्चं भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥९॥

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा

प्रथम महाव्रत में भदन्त !, प्राणातिपात विरमण होता ।
इसलिए सभी हिंसा कार्यो से, छोड़ रहा हूं मैं नाता ।।
हों सूक्ष्म तथा बादर या त्रस, स्थावर भी कोई जीव यदा ।
ना हिंसा करूं न करवाऊं, करते अच्छा ना कहूं कदा ।।

तीन करण और तीन योग से, मन और वचन वा काया से ।
करूं न करवाऊं मैं हिंसा, भला नहीं जानूं मन से ।।
होता हिंसा से पृथक् तथा, निन्दा गर्हा मैं करता हूं ।
प्रथम महाव्रत जीव घात से, अब मैं विरत हो जाता हूं ।।८।।

द्वितीय महाव्रत मृषावाद,- विरमण नामक कहलाता है ।
हे पूज्य ! सर्वथा मृषावाद का, इसमें वर्जन करना है ।।
क्रोध, लोभ, भय हास्य निमित्तक, झूठ नहीं मैं बोलूंगा ।
औरों से न कहाऊंगा, कहते को भला न मानूंगा ।।

त्रिविध करण और त्रिविध योग से, मन से तथा वचन तन से ।
कहूं न कहलाऊं मैं मिथ्या, भला नहीं मानूं मन से ।।
होता मिथ्या से अलग और, निन्दा गर्हा मैं करता हूं ।
द्वितीय महाव्रत मृषावाद,- विरमण को धारण करता हूं ।।९।।

तृतीय महाव्रत चौर्य कर्म से, अब मैं विरमण करता हूं ।
विना दिये पर वस्तु को, मैं ग्रहण भाव से तजता हूं ।।

नगरे वा रन्ने वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा, अदिन्नं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥१०॥

अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ॥११॥

अहावरे पंचमे भंते! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं, सव्वं भंते! परिग्गहं पच्चक्खामि, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं

ग्राम नगर अदत्त वस्तु लेने का, थोड़ा अथवा अधिक बहुत ।
सूक्ष्म स्थूल निर्जीव तथा, चाहे हो चैतन्य सहित ॥
लूंगा अदत्त ना वस्तु कोई, औरों से नहीं लिवाऊंगा ।
बिना दिये लेने वाले को, भला नहीं बतलाऊंगा ॥
तीन करण और तीन योग से, मन से तथा वचन तन से ।
करूं न करवाऊं करते को, भला न बोलूंगा मन से ॥
होता चोरी से पृथक् तथा, निन्दा गर्हा मैं करता हूं ।
तृतीय महाव्रत चौर्य विरति से, संयम धारण करता हूं ॥
करता भदन्त ! मैं चौर्य त्याग, उपरत इन सबसे होता हूं ।
अचौर्य महाव्रत पालन में, अपने को अर्पण करता हूं ॥१०॥

मैथुन विरमण है व्रत चौथा, मैं तन मन से अपनाता हूं ।
हे भदन्त ! सारे मैथुन से, निज मन दूर हटाता हूं ॥
देव मनुज या तिर्यंचों से, मैथुन सेवन करें नहीं ।
मैथुन कर्म ना करें करावें, अनुमोदन मन धरें नहीं ॥
तीन करण और तीन योग से, मन वचन तथा अपने तन से ।
करूं न करवाऊं मैं मैथुन, अनुमोदन न करूं मन से ।
करता भदन्त ! मैथुन वर्जन, निन्दा गर्हा भी करता हूं ।
मैथुन सेवन के महापाप से, दूर स्वयं को करता हूं ॥११॥

परिग्रह विरमण पंचम व्रत को, मैं पूर्ण रूप से अपनाता हूं ।
हे भदन्त ! सब तरह परिग्रह, से मन को दूर हटाता हूं ॥
चाहे थोड़ा या बहुत अधिक, अणु अथवा बादर परिग्रह हो ।

वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पंचमे भंते! महव्वए—उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ॥१२॥

अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि, से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा नेव सयं राइं भुंजिज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं ॥१३॥

इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं, राइ—भोयण—वेरमणं—छट्ठाइं अत्त हियट्ठाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ॥१४॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय—पडिहय पच्चक्खाय—पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा

सचित्त अथवा अचित्त द्रव्य, लेना मन के अनुरूप न हो ।।
स्वयं परिग्रह ग्रहण करूं ना, औरों से ग्रहण कराऊं ना ।
तथा परिग्रह रखने वाले, को भी अच्छा मानूं ना ।।
जीवन भर तीन करण त्रियोगों से, मन से वचन तथा तन से ।
करूं न करवाऊं संग्रह को, भला नहीं जानूं मन से ।।
करता भदन्त ! सब उपधित्याग, निन्दा गर्हा मैं करता हूं ।
परिग्रह विरमण व्रत पालन में, मनको अब अर्पण करता हूं ।।१२।।

रजनी भोजन त्याग रूप, व्रत छट्ठे को अपनाता हूं ।
हे पूज्य ! रात्रि के भोजन को, अब मन से दूर हटाता हूं ।।
अशन पान खादिम या स्वादिम, स्वयं नहीं मैं खाऊंगा ।
और खिलाऊंगा न किसी को, खाते को भला न मानूंगा ।।
जीवन भर तीन करण त्रियोगों से, वचन तथा तन से मन से ।
करूं न करवाऊं निशि भोजन, भला नहीं जानूं मन से ।।
करता भदन्त ! निशि अशन त्याग, निन्दा गर्हा भी करता हूं ।
त्याग रात्रि-भोजन, व्रत-पालन में मन अर्पित करता हूं ।।१३।।

पूर्व कथित ये पंच महाव्रत, छट्ठा रात्रि-भोजन-विरमण ।
अपने हित के लिए धारणकर, करता हूं मैं जग विचरण ।।१४।।
संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में स्थान लिया ।।

परिसागग्रो वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढ़विं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं, ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा-अंगुलियाए वा सलागाए वा सलाग-हत्थेण वा न आलिहेज्जा न विलिहेज्जा न घट्टेज्जा न भिंदेज्जा-अन्नं न आलिहावेज्जा न विलिहावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा अन्नं आलिहंतं वा विलिहंतं वा घट्टंतं वा भिंदंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं-न करेमि न कारवेमि-करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि-तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।।१५।।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा-संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे-दिआ वा राओ वा-एगओ परिसागओ वा-सुत्ते वा जागरमाणे वा-से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा-करगं वा हरितणुगं वा सुद्धोदगं वा-उदउल्लं वा कायं उदउल्लं वा वत्थं-ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं-न आमुसेज्जा न संफुसेज्जा-न आवीलेज्जा न पवीलेज्जा-न अक्खोडेज्जा न पक्खोडेज्जा-न आयावेज्जा न पयावेज्जा । अन्नं न आमुसावेज्जा न संफुसावेज्जा-न आवीलेवेज्जा-न पवीलावेज्जा-न अक्खोडावेज्जा न पक्खोडावेज्जा-न

हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम-खिन्न भाव से रहने का ।।
शुद्ध भूमि या भित्ति-शिला, अति कठिन मृत्तिका ढ़ेले को ।
सचित्त रज धूसर तन को, या पट सचित्त रज वाले को ।।
हाथ पैर या लकड़ी से, बाँसों की बनी खपाटी से ।
अंगुली, शलाका से, अथवा, बहु लोह-शलाका से वैसे ।।
रेखा खींचे ना बार बार, आलेखन उन पर करे नहीं ।
ना घिसे न तोड़े भूदल को, निज तन सम पीड़ा जान सही ।।
ना अन्य जनों से करवाये, करते को भला नहीं जाने ।
तीन करण और तीन योग से, व्रतरक्षण मन में ठाने ।।
भंते ! पृथ्वीकाय घात की, निन्दा गर्हा मैं करता हूं ।
इस व्रत के पालन में ऐसे, अपने को अर्पण करता हूं ।।१५।।

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में स्थान लिया ।।
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव में रहने का ।।

सचित्त जल या ओस हेम धूंअर, ओले या तृण जल को ।
निर्मल व्योम पतित जल को, गीले तन अथवा अंबर को ।।
थोड़ा विशेष ना स्पर्श करे, कर से न निचोड़े वस्त्रों को ।
ना बार बार दाबे उनको झटके ना गीले वस्त्रों को ।।

आयावेज्जा न पयावेज्जा-अन्नं आमुसंतं वा संफुसंतं वा आवीलंतं वा पवीलंतं अक्खोडंतं वा पक्खोडंतं वा आयावंतं वा पयावंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स-भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि-अप्पाणं वोसिरामि ॥१६॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा-संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा-परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से अगणिं वा इंगालं वा मुमुरं वा अच्चि वा-जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा-न उंजेज्जा न घटेज्जा न-भिंदेज्जा-न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा-अन्नं न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निवावेज्जा अन्नं उजंतं वा घट्टंतं वा भिंदंतं वा-उज्जालंतं वा पज्जा-लंतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१७॥

प्रस्फोटन भी करे नहीं, आतप में उनको रक्खे ना ।
इन सभी क्रिया करने वाले को, भला हृदय से जाने ना ।।

तीन करण और तीन योग से, मन से वचन तथा तन से ।
करूं न करवाऊं जीवन भर, अच्छा भी जानूं ना मन से ।।
होता हिंसा से दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूं ।
गर्हा करता गुरुदेव ! सदा, मैं मन से इसको तजता हूं ।।१६।।

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में स्थान लिया ।।
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव में रहने का ।।
अग्निकाय में इंगारक, मुर्मुर अर्चि या ज्वाला को ।
तेज करे ना तृणाग्रवर्ती, अनल जीव वध करने को ।।
नहीं बुझवावे औरों से, जलवाना आदिक करे नहीं ।
घर्षण या भेदन आदि क्रिया, जलवाये उसको कभी नहीं ।।
प्रज्वालन ना करवावे, और नहीं किसी से बुझवावे ।
अंगारक भेदन छेदन भी, नहीं किसी से करवावे ।।
अनल जलाते भेदन करते, या घर्षण करते जन को ।
भला न समझे व्रती जीव, प्रज्वालक या निर्वापक को ।।
तीन करण या तीन योग से, मन और वचन तथा तन से ।
करूं न करवाऊं जीवन भर, भला नहीं मानूं मन से ।।
होता उससे दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूं ।
गर्हा करता हूं पूज्य प्रभो !, मैं हिंसा मन से तजता हूं ।।१७।।

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में भाग लिया ।।
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव से रहने का ।।
चंवर पंखे तालवृन्त या, पत्ते या बहु पत्तों से ।
शाखा डाली या शाखि खण्ड से, अथवा मयूर की पिच्छी से ।।
पांख समूहों से अथवा, अम्बर के झीने पल्ले से ।
हाथ और मुख के द्वारा, ऐसे ही पुट्ठे आदिक से ।।
अपने तन को या बाहर के, अशनादिक ठंडे करने को ।
फूंक न मारे चंवर आदि से, हवा करे ना औरों को ।।
फूंक न मरवावे औरों से, तथा हवा ना करवावे ।
फूंक, हवा करने वाले को, भला नहीं मन से माने ।।
तीन करण और तीन योग से, मन और वचन या काया से ।
करूं ना करवाऊं जीवन भर, भला नहीं मानूं मन से ।।
होता उससे दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूं ।
गर्हा करता हूं पूज्य प्रभो !, मन से मैं हिंसा तजता हूं ।।१८।।

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में भाग लिया ।।
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव में रहने का ।।
बीजों पर या बीज प्रतिष्ठित, आसन, शयन पदार्थों पर ।
अंकुरित वनस्पति या उन पर, रक्खे शयनादिक साधन पर ।।

वा सचित्त-कोल-पडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीएज्जा न तुयटेज्जा अन्नं न गच्छावेज्जा न चिट्ठावेज्जा न निसीयावेज्जा न तुयट्टावेज्जा-अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीयंतं वा तुयट्टंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१६॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिवीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा उरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलगंसि वा पाय-पुच्छणंसि वा रय-हरणंसि वा गुच्छगंसि वा उडुगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए—तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय-पमज्जिय-एगंतमवणेज्जा-नो णं संघायमावजेज्जा ॥२०॥

हरितों पर वा हरित प्रतिष्ठित, छिन्न हरित के भागों पर।
गमन, स्थिति या उपवेशन, इन पर करना होता दुःख कर॥
ऐसे न चलावे औरों को, बैठावे और न खड़ा करे।
नहीं सुलावे परजन को, जीवों की रक्षा ध्यान धरे॥
हरितों पर चलते या ठहरे, बैठे या सोते अन्यों को।
भला न जाने विराधना, करने वाले प्राणी-गण को॥
तीनकरण और तीन योग से, मन से वचन तथा तन से।
करूं न करवाऊं जीवनभर, भला नहीं मानूं मन से॥
कृत पापकर्म से हटता हूं, आत्मा से निन्दा करता हूं।
गर्हा करता गुरुदेव ! हृदय से, दोषों को मैं अब तजता हूं॥१६॥

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया।
भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में भाग लिया॥
हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या गहरी निद्रा का।
ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव से रहने का॥
कीट, पतंगे, कुंथु चींटियां, हाथ पैर के भागों पर।
जंघा, भुजा, उदर, वक्षस्थल, सिर, पट और पात्र ऊपर॥
कंबल, पद प्रोंछन आदिक पर, रजोहरण या पूंजनी पर।
स्थण्डिल पात्र दण्ड के ऊपर, चौकी वा पाटे के ऊपर॥
शय्या संस्तारक अन्य तथा, ऐसे विध-विध उपकरणों पर।
पहले कहे हुए प्राणी गण, काय तथा उपकरणों पर॥
वार वार प्रतिलेखन कर, यतना से उनको दूर करे।
विना परस्पर टकराये, जीवों को ले एकान्त धरे॥२

१. अजयं चरमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ।।

२. अजयं चिट्ठमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ।।

३. अजयं आसमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ।।

४. अजयं सयमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ।।

५. अजयं भुंजमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ।।

६. अजयं भासमाणो उ, पाणभूयाइं हिंसई ।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं ।।

७. कहं चरे ? कहं चिट्ठे ?, कहमासे ? कहं सए ? ।
कहं भुंजंतो भासंतो, पाव-कम्मं न बंधइ ? ।।

८. जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पाव-कम्मं न बंधइ ।।

९. सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पाव कम्मं न बंधइ ।।

१०. पढ़मं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए ।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिइ सेय-पावगं ।।

१. अयत्न से चलने वाला, प्राणी की हिंसा करता है ।
वांधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

२. अयत्न से जो खड़ा रहे, प्राणी की हिंसा करता है ।
वांधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

३. यत्न रहित वैठे कोई, प्राणी की हिंसा करता है ।
वांधता पाप कर्मों को है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

४. यत्न रहित सोनेवाला, प्राणी की हिंसा करता है ।
वांधता पाप कर्मों को है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

५. यत्न रहित खाने वाला, प्राणी की हिंसा करता है ।
वांधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

६. यत्न रहित भाषण करता, प्राणी की हिंसा करता है ।
वांधता पाप कर्मो को है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

७. कैसे चले खड़ा हो कैसे ?, कैसे वैठे और शयन करे ?
कैसे खाते, भाषण करते ना पाप कर्म का वन्ध करे ?

८. यतना से चले खड़ा होवे, यतना से वैठे शयन करे ।
यतना से खाये वोले तो, ना पाप कर्म का वंध धरे ॥

९. सव जीवों में आत्म वुद्धि, एवं सव में समदर्शी हो ।
आस्रव रोधी दान्त श्रमण के, न पाप कर्म का वंधन हो ॥

१०. पहले ज्ञान दया पीछे, ऐसा सव मुनिजन कहते हैं ।
अज्ञानी क्या कर सकते ?, ना अच्छा वुरा समझते हैं ॥

११. कल्याण कर्म सुनकर जाने, सुन पाप कर्म का ज्ञान करे ।
दोनों ही सुनकर समझे नर, फिर श्रेय कर्म में ध्यान धरे ।।

१२. जो जीवों को नहीं जानता, फिर अजीव का ज्ञान नहीं ।
जीव अजीव विना जाने, संयम का होता वोध नहीं ।।

१३. जानता यहां जो जीवों को, एवं अजीव को भी जाने ।
जो जीव अजीव युगल जाने, वही नर संयम को जाने ।।

१४. जव जीवों और अजीवों का, दोनों का ज्ञाता हो जाता ।
तव वहुविध गति सव जीवों की, वह विना कहे अवगत करता ।।

१५. जव वहुविध गति सव जीवों की, साधक नर जान यहां लेता ।
तव पुण्य पाप और वंध मोक्ष, इनका भी ज्ञान सहज होता ।।

१६. जव पुण्य पाप और वंध मोक्ष, इनको है सहज जान लेता ।
तव देव मानवी भोगों पर, तन मन से नहीं ध्यान देता ।।

१७. जव देव मानुषी भोगों पर, तन मन से नहीं ध्यान देता ।
तव वाह्याभ्यन्तर ममता को, वह सहज रूप से तज देता ।।

१८. जव वाहर भीतर की ममता, का त्याग सहज में कर देता ।
तव मुण्डित होकर इस जग में, साधुता प्राप्त है कर लेता ।।

१९. जव मुण्डित होकर इस जग में, साधुता प्राप्त कर लेता है ।
तव उत्कृष्ट धर्म संवर के, पद को वह पा लेता है ।।

२०. जव उत्कृष्ट धर्म संवर के, पद को वह पा लेता है ।
तव आत्मिक अज्ञान जन्य, कर्माणु दूर कर देता है ।।

२१. जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥

२२. जया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥

२३. जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥

२४. जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥

२५. जया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं, गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥

२६. सुह सायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोअस्स, 'दुलहा सुगइ' तारिसगस्स ॥

२७. तवो गुण पहाणस्स, उज्जुमइ-खंती-संजमरयस्स ।
परीसहे जिणंतस्स, 'सुलहा सुगइ' तारिसगस्स ॥

२८. पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर भवणाइं ।
जे सिं पिओ तवो संजमो य, खंति य बंभचेरं च ॥

२९. इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठी सया जए ।
दुल्लहं लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहिज्जासि ॥
—त्ति बेमि ।

—:०:—

२१. जव आत्मिक अज्ञान जन्य, कर्माणु दूर कर देता है।
तव सार्वत्रिक पूर्ण ज्ञान, और दर्शन को पा लेता है॥

२२. जव सार्वत्रिक पूर्ण ज्ञान, और दर्शन को पा लेता है।
तव सब लोक अलोक जानकर, जिन केवली हो जाता है॥

२३. जव सव लोक अलोक जानकर, जिन केवली हो जाता है।
तव योगों का रोधनकर, शैलेशी पद पा लेता है॥

२४. जब योगों का रोधनकर, शैलेशी पद पा लेता है।
तव कर्मों का पूर्ण क्षपणकर, नीरज सिद्धि को पाता है॥

२५. जब कर्मों का पूर्ण क्षपणकर, नीरज सिद्धि को पाता है।
तव लोकाग्र भाग संस्थित, शाश्वत शिव पद पा लेता है॥

२६. सुख के स्वादी साता व्याकुल, निद्रा को आदर जो देते।
धावन प्रधान जो आरम्भी, वे श्रमण सुगति दुर्लभ पाते॥

२७. तप गुण प्रधान ऋजु शुद्ध बुद्धि, जो क्षमा साधनारत मुनिवर।
जो परीषहों के जेता हैं, ऐसों की सद्गति है सुखकर॥

२८. जिनको प्यारा तप संयम है, क्षान्ति और सत्-शीलप्रधान।
वे पीछे से भी आकर के, पा लेते हैं अमर विमान॥

२९. इस प्रकार षट् जीव निकाय में, समदृष्टि सदा शुभ यत्न करे।
दुर्लभ श्रमणधर्म पाकर, ना जीव विराधन कर्म करे॥

—ऐसा मैं कहता हूं।

उत्तराध्ययन-सूत्र

(भ० महावीर का अन्तिम उपदेश)

(३)

चौथा अध्ययन-असंस्कृत

१. असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं ।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिंति ।।

२. जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा, समाययंति अमइं गहाय ।
पहाय ते पासपयट्ठिए णरे वेराणुबद्धा णरयं उवेंति ।।

३. तेणे जहा संधिमुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि ।।

४. संसारमावण्ण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, ण बंधवा बंधवयं उवेंति ।।

५. वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था ।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, णेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ।।

६. सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवि, णो वीससे पंडिए आसुपण्णे ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंडपक्खी व चरेऽप्पमत्ते ।।

७. चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो ।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी ।।

उत्तराध्ययन–सूत्र

(भ० महावीर का अन्तिम उपदेश)

(३)

चौथा अध्ययन–असंस्कृत

१. छोड़ प्रमाद, जुड़े नां जीवन, जरसोपनीत का त्राण नहीं।
यों जान प्रमादी हिंस्र-असंयत, लेंगे किसकी शरण कहीं ?

२. पाप–प्रवृत्ति से यदि कोई, मानव वैभव को पाता है।
धन छोड़ वैर से बंधा देख लो, नरक लोक वह जाता है ॥

३. ज्यों चोर सेंधमुख पर पकड़ा जाकर, निज कर्म वश काटा जाता।
त्यों यह जीव उभय भव में, कर्म भोगे विन छूट न पाता ॥

४. स्व पर के कारण जो संसारी, साधारण कर्म कमाता है।
कर्म भोग के समय कोई, बान्धव नहीं भाग बंटाता है ॥

५. धन के विषयी को त्राण नहीं, इस भव में अथवा पर भव में।
बुझ गये दीपवत् अति मोही, देखे पथ भी न चले वन में ॥

६. सुप्त जनों में भी ज्ञानी, प्रतिबुद्ध भरोसा करे नहीं।
निर्बल शरीर [illegible] बड़ा निष्ठुर, भारण्ड सम करे प्रमाद नहीं ॥

७. मुनि चले दोष से शंकित हो, थोड़ा भी दोष बन्धन समझे।
हो लाभ जहाँ तक करे तन पोषण, विन लाभ देह का मोह तजे ॥

८. छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खियवम्मधारी ।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ॥

९. स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं ।
विसीयइ सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥

१०. खिप्पं ण सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ।
समिच्च लोगं समया महेसी, आयाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो ॥

११. मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं, अणेगरूवा समणं चरंतं ।
फासा फुसंती असमंजसं च, ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से ॥

१२. मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा ।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं ण सेवेज्ज पहेज्ज लोहं ॥

१३. जे संखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्जदोसाणुगया परज्झा ।
एए अहम्मेत्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीर भेए—त्ति बेमि॥

नवमां अध्ययन—नमि प्रव्रज्या

१. चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि ।
उवसन्तमोहणिज्जो, सरइ पोराणियं जाइं ॥

२. जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो[1] अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिणिक्खमई णमी राया ॥

३. सो देवलोगसरिसे, अंतेउरवरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु णमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ॥

---

१. 'सयं सं बुद्धो' यह पाठान्तर भी है ।

८. इच्छानिरोध से मुक्ति मिले, ज्यों शिक्षित हय कवचधारी।
पूर्व वर्ष चल अप्रमत्त हो, शीघ्र मुक्ति ले व्रतधारी॥

९. जो पूर्व नहीं मिलता पीछे भी, निश्चय यह शाश्वत वाद कहे।
पर शिथिल आयु में काल जनित, तनभेद देख मन खेद लहे॥

१०. शीघ्र विवेक न पा सकता, उठ अतः काम सुख त्याग करो।
यह लोक जान समभाव रमो, आत्मार्थी जागृत हो विचरो॥

११. वार वार मोहादि जीतते, उग्र विहारी मुनि जन को।
विविध विषय परिषह दुःख देते, मन से न संत सोचे उनको॥

१२. अनुकूल स्पर्श मन ललचाते, वैसे में मन ना प्रीति धरे।
कर क्रोध दूर और मान हटा, माया सेवे ना लोभ करे॥

१३. परवादी संधेय-आयु को, राग द्वेषवश हो कहते।
धर्म शून्य उनका मन तज, गुण अर्जन अन्तिम दम करते॥

नवमां अध्ययन—नमि प्रव्रज्या

१. अमर लोक से च्युत होकर, नमि ने नर भव में जन्म लिया।
उपशान्त मोह के होने से, निज पूर्व जन्म का स्मरण किया॥

२. पूर्व जन्म की स्मृति से नमि को, श्रेष्ठ धर्म का बोध हुआ।
राज्य भार सुत को देकर, गृहस्थ धर्म से निवृत्त हुआ॥

३. सुर लोक सरीसे भोगों का, अन्तःपुर में उपभोग किया।
धर्म बुद्ध हो नमि राजा ने, उन भोगों से मन को हटा लिया॥

४. मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं।
चिच्चा अभिणिक्खंतो, एगंतमहिड्ढिओ भयवं ॥

५. कोलाहलगभूयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतम्मि।
तइया रायरिसिम्मि, णमिम्मि अभिणिक्खमंतम्मि ॥

६. अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जाठाणमुत्तमं।
सक्को माहणरूवेणं, इमं वयणमब्बवी–

७. 'किण्णु भो अज्ज ! मिहिलाए, कोलाहलगसंकुला।
सुव्वं ति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ?'

८. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

९. 'मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे।
पत्तपुप्फफलोवेए, बहूणं बहूगुणे सया ॥

१०. वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो ! खगा' ॥

११. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

१२. 'एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मन्दिरं।
भयवं अंतेउरं तेणं, कीस णं णावपेक्खह ?'

१३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी देविंदं इणमब्बवी—

४. जनपद युत प्रिय मिथिलानगरी, सेना रनिवास तथा परिजन ।
सब छोड़ शान्ति पथ पर निकल पड़े, एकान्तवास में स्थिर कर मन ।।

५. मिथिला में कोलाहल छाया, जब नमि प्रव्रज्या हेतु चला ।
सब राज विभव तज राजर्षि, संयम पथ पकड़ा बहुत भला ।।

६. ज्ञानादि गुणों की उच्च भूमि पर, उद्यत हो नमि ने गमन किया ।
विप्ररूपधारी सुरपति ने तब, निकट पहुंच यों कथन किया ।।

७. राजर्षि ! आज इस मिथिला के, महलों में पुर के घर-घर में ।
दारुण कोलाहल व्याप रहा, क्यों बाल वृद्ध सब के स्वर में ?

८. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुति गोचर कर ।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ।।

९. था एक वृक्ष मिथिला-पुर में, सुन्दर शीतल छाया वाला ।
फल पुष्प पत्र से लदा हुआ, खग गण सेवित बहुगुण वाला ।।

१०. हे विप्र ! एक दिन हवा चली, वह सुन्दर वृक्ष तब उखड़ गया ।
उसके आश्रित पक्षी रोते हैं, जिनका सुनीड़ है उजड़ गया ।।

११. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्षि-वचन श्रुति गोचर कर ।
देवेन्द्र नमि को यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर ।।

१२. पवन प्रसारित अग्नि से यह, जल रहा तुम्हारा मन्दिर है ।
हे नाथ ! नहीं क्यों देख रहे, अन्तःपुर भी जलने पर है ।।

१३. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र-वचन श्रुति गोचर कर ।
नमि देवेन्द्र से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर ।।

१४. 'सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो णत्थि किंचणं ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, ण मे डज्झइ किंचणं ।।

१५. चत्तपुत्तकलत्तस्स, णिव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं ण विज्जई किंचि, अप्पियं पि ण विज्जए ।।

१६. बहु खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ' ।।

१७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

१८. 'पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य ।
उस्सूलग सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया' ।।

१९. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

२०. 'सद्धं णगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं ।
खंति णिउणपागारं तिगुत्तं दुप्पधंसयं ।।

२१. धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया ।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमंथए ।।

२२. तवणारायजुत्तेणं भित्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए' ।।

१४. हम सुख से वसते जीते हैं, ना यहाँ हमारा कुछ भी है।
मिथिला के जलने से मेरा, जलता न यहां पर कुछ भी है॥

१५. पत्नी पुत्रादिक के त्यागी, व्यवसाय विरत जो भिक्षुक हैं।
प्रिय अप्रिय कुछ भी नहीं वहां, मिट गई मन की चाह जिनकी है॥

१६. है बहुत भद्र उस मुनिवर के, भिक्षाजीवी अनगारी के।
सर्व – संग से विप्रमुक्त, एकान्तरूप सुखधारी के॥

१७. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्षि–वचन श्रुतिगोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर॥

१८. राजन् ! परकोटा पुरद्वार, खाई शतमारक अस्त्र बना।
फिर चाहो तुम मुनि बन जाना, एकान्त तपी और शुद्ध मना॥

१९. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र–वचन श्रुतिगोचर कर।
नमि देवेन्द्र से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर॥

२०. श्रद्धा नगर अर्गला[1] तप संयम, शान्ति का दृढ़ प्राकार[2]।
मन वाणी काया से गोपित, रक्षा का मुनि करे विचार॥

२१. धनुष पराक्रम का करके, ईर्या को उसकी डोर करे।
धृति को मूठ बनाकर उसकी, बांध सत्य से जोर धरे॥

२२. तप का तीर चढ़ा धनु ऊपर, कर्मों का कंचुक भेद चले।
हो मुक्त श्रमण इस समरांगण से, संसार भ्रमण का अन्त करे॥

---

१. आगल २. परकोटा

२३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

२४. 'पासाए कारइत्ताणं वड्ढमाणगिहाणि य ।
बालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया' ॥

२५. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

२६. 'संसयं खलु सो कुणइ, जो मग्गे कुणइ घरं ।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासयं' ॥

२७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

२८. 'आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे ।
णगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया' ॥

२९. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

३०. 'असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंडो पउंजइ ।
अकारिणोत्थ बज्झंति, मुच्चई कारओ जणो' ॥

३१. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

२. 'जे केइ पत्थिवा तुज्झं, णाणमंति णराहिवा ।
वसे ते ठावइत्ता णं, तओ गच्छसि खत्तिया' !

२३. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्षि–वचन श्रुति-गोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर॥

२४. बनवाओ प्रासाद भूप ! और वर्द्धमान सुन्दर शाला।
हो चन्द्रशाल उज्ज्वल शीतल, फिर मुनि होकर पकड़ो माला॥

२५. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र–वचन श्रुति-गोचर कर।
नमि देवेन्द्र से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर।

२६. संशय निश्चय वह करता है, जो पथ ही में बनवाता घर।
जाने की इच्छा जहाँ वहाँ, बनवाये शाश्वत अपना घर।

२७. यह हेतु और कारण प्रेरित, सुरराज अर्थ ऐसा सुनकर।
राजर्षि नमि को इस प्रकार, बोले फिर वचन भाव से भर॥

२८. चोर लुटेरों गठकट्टों से, नागर जन को निर्भय करना।
करके कल्याण नगर का तुम, फिर भिक्षापथ पर पग धरना॥

२९. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर॥

३०. बहुत बार मानव भ्रमवश, गलत दण्ड दे जाते हैं।
दण्डित होते हैं निरपराध, दोषी पूरे बच जाते हैं॥

३१. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्षि–वचन श्रुतिगोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर॥

३२. हे नरपति ! तेरे सन्मुख जो, भूपाल नहीं आकर नमते।
वश में पहले उनको करके, भले लगोगे अन्तःपुर तजते॥

३३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

३४. 'जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ॥

३५. अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ?,
अप्पाणमेवअप्पाणं,[1] जइत्ता[2] सुहमेहए॥

३६. पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पं जिए जियं'॥

३७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

३८. 'जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया'!

३९. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

४०. 'जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ, अदित्तस्स वि किंचणं'॥

४१. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

---

१. 'अप्पणाचेव अप्पाणं' ऐसा पाठ भी कुछ प्रतियों में मिलता है।
२. 'जिणित्ता' पाठान्तर भी है।

३३. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र-वचन श्रुतिगोचर कर।
नमि देवेन्द्र से यों बोले, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ।।

३४. दुर्जय रण में दस लाख सुभट, पर हँसते विजय मिलाता है।
स्वयं को एक विजय करता, वह परम जयी कहलाता है ।।

३५. कर युद्ध स्वयं से बाहर में लड़ने से क्या फल मिलता है।
अन्तर्मन से दुर्भाव जीत, मानव हर्षित मन रहता है ।।

३६. इन्द्रिय पाँच, क्रोध माया मद, लोभ दोष को जान लिया।
दुर्जय आत्मविजय कर निजको, जीते सब जग जीत लिया ।।

३७. यह हेतु और कारण प्रेरित, राजर्षि-वचन श्रुतिगोचर कर।
देवेन्द्र नमि से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर ।।

३८. विपुल यज्ञ का यजन करा, दे भोज्य श्रमण और ब्राह्मण को।
दो दान, भोग और यज्ञ करो, फिर पाना नृप ! मुनि जीवन को ।।

३९. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ ऐसा सुनकर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, फिर वचन अमूल्य ज्ञान से भर ।।

४०. दस लाख गाय जो मास मास, देता संयम से हो सूना।
दे दान नहीं कुछ भी पर है, संयम का मूल्य सदा दूना ।।

४१. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी को यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर ।।

४२. 'घोरासमं चइत्ताणं, अण्णं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा !'

४३. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

४४. 'मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए ।
ण सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं' ।।

४५. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

४६. 'हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं ।
कोसं च वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया' !

४७. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

४८. 'सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया ।
णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ।।

४९. पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्णं णालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे' ।।

५०. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी—

४२. करके तुम त्याग गृहस्थाश्रम, अन्याश्रम की क्यों चाह करो।
घर में ही पौषधरत रहकर, राजन्! सेवा का भाव धरो॥

४३. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर॥

४४. जो बाल मास का तप करके, भोजन कुशाग्र भर है करता।
श्रुत चरणधर्म की कलाषोडसी, भी वह प्राप्त नहीं करता॥

४५. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी को यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर॥

४६. सोना चांदी मणि मुक्ता फल, कांस्यादि वस्त्र वाहन सुखकर।
इनसे निज कोष बढ़ा राजन्!, पीछे मुनिव्रत को धारण कर॥

४७. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, अन्तर में गहरा चिन्तन कर॥

४८. सोने चांदी के गिरि निश्चय,
कैलाश तुल्य अगणित पाले।
फिर भी न लुब्ध को जरा तोष,
इच्छा अनन्त नभ विस्तारे॥

४९. जो चावल से भरी धरा यह, स्वर्ण और पशुओं के संग।
है न एक के लिये बहुत, यह सोच धरें हम तप में रंग॥

५०. यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी से यों बोले, अन्तर में गहरा चिन्तन कर॥

५१. 'अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा !
असंते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहम्मसि' ।।

५२. एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी—

५३. 'सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे भोए पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गई ।।

५४. अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई ।
माया गईपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं' ।।

५५. अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं ।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं—

५६. 'अहो ! ते णिज्जओ कोहो, अहो ! माणो पराइओ ।
अहो ! ते णिरक्किया माया, अहो ! लोहो वसीकओ ।।

५७. अहो ! ते अज्जवं साहु, अहो ! ते साहु मद्दवं ।
अहो ! ते उत्तमा खंती, अहो ! ते मुत्ति उत्तमा ।।

५८. इहंसि उत्तमो भंते, पच्छा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि णीरओ' ।।

५९. एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदइ सक्को ।

६०. तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुण्डलतिरीडी ।।

५१. आश्चर्य ! बड़े उन्नत क्षण में, नृप ! त्याग भोग का करते हो ।
असत् काम की वांछा से, संकल्पाहत तुम रहते हो ॥

५२. यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर ।
सुरपति से बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥

५३ है काम शल्य और विष भारी, आशीविषवत् जीवन-हारी ।
बिन भोगे जाते दुर्गति में, कामेच्छा ऐसी दुखकारी ॥

५४. है क्रोध नीच पद पहुँचाता, अभिमान अधमगति देता है ।
माया से सद्गति रुकती है, लोभी दोनों भव खोता है ॥

५५. विप्र-रूप को छोड़ अमरपति, इन्द्ररूप धारण करके ।
करते हुए स्तवन अभिवादन, इन मधुर स्वरों में गा करके ॥

५६. अहो ! क्रोध को जीता तुमने, किया पराजित तुमने मान ।
अहो ! छोड़ दी माया तुमने, वश में किया लोभ शैतान ॥

५७. अहो ! श्रेष्ठ है आर्जव तेरा, मार्दव भी है हितकारी ।
सर्वोत्तम है क्षमा तुम्हारी, लोभ-त्याग विस्मयकारी ॥

५८. इस भव में तुम उत्तम हो, पर भव में भी होंगे उत्तम ।
कर्म धूलि से रहित सिद्धि, पद पाओगे तुम पावनतम ॥

५९. यों करते हुए स्तवन सुरपति ने, उत्तम श्रद्धा से महिमा की ।
करके प्रदक्षिणा बार बार, वन्दना नमी नरपति की की ॥

६०. चक्र और अंकुश चिह्नित, मुनि के चरणों में नमन किया ।
ललित चपल-कुण्डल किरीटधर, शक्र स्वर्ग में लौट गया ॥

६१. णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ।।

६२. एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से नमि रायरिसि–त्तिबेमि ।।

दसवां अध्ययन–द्रुम पत्रक

१. दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

२. कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

३. इह इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

४. दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

५. पुढविकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

६. आउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

७. तेउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

६१. प्रत्यक्ष शक्र से प्रेरित हो, नमि ने संयम मन रमा लिया।
तजकर भवनादिक वैदेही, श्रामण्य भाव मन अटल किया॥

६२. संबुद्ध विचक्षण पंडितजन, जग में ऐसा ही करते हैं।
हो दूर भोग से नमि नृपवत्, वे संयम पथ पर चलते हैं॥

दसवां अध्ययन--द्रुम पत्रक

१. ज्यों रजनीगण के जाने पर, तरु-पत्र पुराने जाते झर।
वैसे नश्वर मानव-जीवन, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर॥

२. कुश-नोक[1] लटकते ओसबिन्दु, कुछ देर ठहरते ज्यों उस पर।
वैसे मानव का जीवन है, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर॥

३. यह अल्पकाल की आयु और, जीवन बहु विघ्नों का है घर।
कर दूर पुराकृत कर्म धूलि, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर॥

४. चिर काल तक भी सब जीवों को, मानव जीवन है दुर्लभतर।
होते हैं कर्म-विपाक तीव्र, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर॥

५. पृथ्वी के भव में जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
बसता वह काल असंख्य वहां, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर॥

६. अप्काय योनि में जा प्राणी, उत्कृष्ट काल तक जीवन धर कर।
बसता वह काल असंख्य वहां, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर॥

७. तेजकाय भव जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
बसता वह काल असंख्य वहां, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर॥

---

१. घास की नोंक

८. वाउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

९. वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालमणंतदुरंतयं समयं गोयम ! मा पमायए॥

१०. बेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

११. तेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

१२. चउरिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

१३. पंचिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
सत्तट्ठभवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए॥

१४. देवे नेरइए य गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
इक्केक्कभवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए॥

१५. एवं भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम ! मा पमायए॥

१६. लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरियत्तणं पुणरवि दुल्लहं।
बहवे दस्सुया मिलक्खुया, समयं गोयम ! मा पमायए॥

८. वायुकाय में जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल असंख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

९. हरितकाय भव जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल अनन्त वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

१०. दो इन्द्रियकाय पहुँच प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता संख्यामित[1] काल वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

११. त्रीन्द्रियकाय पहुँच प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता संख्यामित काल वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

१२. चतुरिन्द्रिय योनि में जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता संख्यामित काल वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

१३. पंचेन्द्रिय भवमें जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
सात आठ भव ग्रहण करे, गौतम ! प्रमाद क्षण का मत कर ।।

१४. देव नरक गति में जा प्राणी, उत्कृष्ट काल तन धारण कर।
एक एक भव ग्रहण करे, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

१५. यों कर्म शुभाशुभ से प्राणी, भवभव में भटके तन धर कर।
विषयों में भूला भान फिरे, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

१६. दुर्लभ मानव भव पाकर भी, आर्यत्व मिलाना दुर्लभतर।
हैं दस्यु म्लेच्छ[2] क्रोड़ों ही नर, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

---

१. संख्यात २. चोर—अनार्य

१७. लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीणपंचिदियया हु दुल्लहा।
विगलिन्दियया हु दीसइ, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१८. अहीणपंचिदियत्तं वि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थिनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१९. लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरवि दुल्लहा।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

२०. धम्मं पि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

२१. परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सोयबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

२२. परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से चक्खुबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

२३. परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से घाणबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

२४. परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से जिब्भबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

२५. परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से फासबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१७. पाकर भी आर्यत्व पूर्ण, इन्द्रिय का पाना अति दुष्कर।
हैं कितने इन्द्रिय-विकल यहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

१८. अविकल पांचों इन्द्रिय पायीं, पर उत्तम धर्म श्रवण दुष्कर।
हैं कुतीर्थसेवी कितने, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

१९. उत्तम धर्म श्रवण कर भी, श्रद्धा की प्राप्ति पुनः दुष्कर।
मिथ्यात्व-निषेवक[1] जन होता, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२०. धार्मिक श्रद्धा होने पर भी, कायिक आचरण महादुष्कर।
कितने यहाँ काम-गुण-मूर्च्छित, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२१. हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते ये केश धवल पक कर।
घट रहा श्रवणबल भी तेरा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२२. हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, ये केश धवल होते पककर।
घट रहा नयनबल है तेरा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२३. हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते हैं केश धवल पक कर।
घट रहा है घ्राण-बल तेरा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२४. हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते हैं केश धवल पक कर।
घट रहा तुम्हारा जिह्वाबल, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२५. हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते हैं केश धवल पक कर।
घट रहा स्पर्श का बल तेरा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

---

१. मिथ्यात्वी ।

२६. परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सव्ववले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

२७. अरई गंड विसूइया, आयंका विविहा फुसंति ते।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

२८. वुच्छिद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

२९. चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।
मा वंतं पुणो वि आइए, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

३०. अवउज्झिय मित्तबंधवं विउलं चेव धणोहसंचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

३१. ण हु जिणे अज्ज दीसइ, वहुमए दीसइ मग्गदेसिए ।
संपइ णेयाउए पहे, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

३२. अवसोहिय कंटगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

३३. अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमे वगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

३४. तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारंगमित्तए, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

२६. हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते हैं केश धवल पक कर।
क्रमशः सब बल हो रहे क्षीण, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२७. फोड़ा पित्त तथा हैजा, करते अनेक रुज[1] तन में घर।
जिनसे विनष्ट होती काया, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२८. ज्यों शरद-कुमुद जल लिप्त न हो, यों स्नेह भाव को छेदन कर।
हो जा निर्लिप्त जगत से तूं, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

२९. धन पत्नी को छोड़ प्रव्रज्या, से मुनिता के पथ पर बढ़कर।
वान्त[2] भोग फिर मत पीओ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३०. बान्धव मित्र विपुल संचित, धन को पूरे मन से तजकर।
मत फिर से उनकी इच्छा धर, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३१. निश्चय न आज जिनका दर्शन, पथ दर्शक भी ना एक नजर।
भवतारक पथ पर प्राप्त तुम्हें, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३२. कण्टकयुत मिथ्या पथ तज के, अवतीर्ण हुए विस्तृत पथ पर।
निर्मल मन से उस पथ पर चल, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३३. अबल भारवाही जैसे मत, विषम मार्ग अवगाहन कर।
पछताते उत्पथगामी फिर, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३४. कर गया पार तूं महा उदधि, तट पर आकर क्यों रहा ठहर।
कर जल्दी पार पहुँचने की, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

---

१. रोग। २. वमन किये हुए=छोड़े हुए।

३५. तूं सिद्धलोक को पायेगा, शुभ क्षपक श्रेणि आरोहण कर।
शिव क्षेम अनुत्तरपद को पा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

३६. संबुद्ध शान्त संयत होकर, तूं ग्राम नगर में विचरण कर।
कर शान्ति मार्ग का संवर्धन, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ।।

३७. पद अर्थ सुशोभित श्रेष्ठ परम, ज्ञानी जन कथित वचन सुनकर।
गौतम गए सिद्धि गति को, निज राग द्वेष का छेदन कर ।।

तेरहवां अध्ययन—चित्तसम्भूतीय

१. हस्तिनापुर में जाति निमित्तक, किया निदान निन्दा पाकर।
चूलनी-कुक्षि से ब्रह्मदत्त, जन्मा प्रिय सुरभव से आकर ।।

२. सम्भूत जन्म काम्पिल्य नगर, और पुरिमताल में चित्त हुआ।
हो सेठ महाकुल में फिर भी, सुन धर्म प्रव्रज्या ग्रहण किया ।।

३. काम्पिल्य नगर में चित्त और, संभूत परस्पर मिल पाये।
अपने सुख दुःख का फल विपाक, दोनों को दोनों बतलाये ।।

४. महाऋद्धि संयुत् चक्री था, महायशस्वी भू स्वामी।
बहुमान पुरस्सर ब्रह्मदत्त, भाई को बोला हितकामी ।।

५. हम दोनों पहले भाई थे, अन्योन्य प्रेम के वश रहते।
अनुरक्त परस्पर में दोनों, हित एक दूसरे का कहते ।।

६. थे दोनों दास दशार्ण बीच, मृग कालिंजर पर्वत पर थे।
मृत-गंगा तट पर रहे हंस, चाण्डाल बने काशी में थे ।।

३५. अकलेवरसेणिमूसिया, सिद्धिं गोयम लोयं गच्छसि ।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

३६. बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गामे गए नगरे व संजए ।
संतिमग्गं च वूहए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

३७. वुद्धस्स निसम्म भासियं, सुकहियमट्ठपओवसोहियं ।
रागं दोसं च छिंदिया, सिद्धिगइं गए गोयमे ॥ त्ति बेमि ॥

तेरहवां अध्ययन–चित्त सम्भूतीय

१. जाईपराइओ खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीए बंभदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ ॥

२. कंपिल्ले संभूओ चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥

३. कंपिल्लम्मि य नयरे, समागया दो वि चित्तसंभूया ।
सुहदुक्खफलविवागं, कहेंति ते एक्कमेक्कस्स ॥

४. चक्कवट्टी महिड्ढिओ, बंभदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणेणं, इमं वयणमब्बवी ॥

५. आसिमो भायरा दो वि, अन्नमन्नवसाणुगा ।
अन्नमन्नमणुरत्ता, अन्नमन्नहिएसिणो ॥

६. दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे ।
हंसा मयंगतीरे य, सोवागा कासिभूमिए ॥

३५. तूं सिद्धलोक को पायेगा, शुभ क्षपक श्रेणि आरोहण कर।
शिव क्षेम अनुत्तरपद को पा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३६. संबुद्ध शान्त संयत होकर, तूं ग्राम नगर में विचरण कर।
कर शान्ति मार्ग का संवर्धन, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥

३७. पद अर्थ सुशोभित श्रेष्ठ परम, ज्ञानी जन कथित वचन सुनकर।
गौतम गए सिद्धि गति को, निज राग द्वेष का छेदन कर ॥

तेरहवां अध्ययन–चित्तसम्भूतीय

१. हस्तिनापुर में जाति निमित्तक, किया निदान निन्दा पाकर।
चूलनी-कुक्षि से ब्रह्मदत्त, जन्मा प्रिय सुरभव से आकर ॥

२. सम्भूत जन्म काम्पिल्य नगर, और पुरिमताल में चित्त हुआ।
हो सेठ महाकुल में फिर भी, सुन धर्म प्रव्रज्या ग्रहण किया ॥

३. काम्पिल्य नगर में चित्त और, संभूत परस्पर मिल पाये।
अपने सुख दुःख का फल विपाक, दोनों को दोनों बतलाये ॥

४. महाऋद्धि संयुत् चक्री था, महायशस्वी भू स्वामी।
बहुमान पुरस्सर ब्रह्मदत्त, भाई को बोला हितकामी ॥

५. हम दोनों पहले भाई थे, अन्योन्य प्रेम के वश रहते।
अनुरक्त परस्पर में दोनों, हित एक दूसरे का कहते ॥

६. थे दोनों दास दशार्ण बीच, मृग कालिंजर पर्वत पर थे।
मृत-गंगा तट पर रहे हंस, चाण्डाल बने काशी में थे ॥

७. देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया।
इमा णो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा ॥

८. कम्मा नियाणप्पगडा, तुमे राय ! विचिंतिया।
तेसिं फलविवागेण, विप्पओगमुवागया ॥

९. सच्चसोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा।
ते अज्ज परिभुंजामो, किण्णु चित्ते वि से तहा ?

१०. सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।
अत्थेहिं कामेहिं य उत्तमेहिं, आया ममं पुण्णफलोववेए ॥

११. जाणासि संभूय ! महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं!, इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया ॥

१२. महत्थरूवा वयणप्पभूया, गाहाणुगीया नरसंघमज्झे।
जे भिक्खुणो सीलगुणोववेया इह उज्जयंते समणो मि जाओ ॥

१३. उच्चोदए महु कक्के य बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा।
इमं गिहं चित्त धणप्पभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥

१४. नट्टेहिं गीएहिं य वाइएहिं, नारीजणाहिं परिवारयंतो।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥

१५. तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं, नराहिवं कामगुणेसु गिद्धं।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था ॥

. सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥

७. सौधर्म-लोक में देव हुए, अति ऋद्धिमान दोनों भाई।
हम सबका यह छट्ठा भव है, जिसमें छूटी है मित्राई।।

८. कर निदान चक्री पद का, राजन्! तुमने मन ध्यान किया।
उस भोग कर्म के फलस्वरूप, हमने वियोग फल प्राप्त किया।।

९. सत्य शौचमय प्रकट कर्म, मैंने पहले कर लिए भले।
हूँ आज भोगता फल उसका, क्या चित्त! तुम्हें भी वही मिले?।।

१०. शुभ कर्म सफल नर के होते, है कृत-कर्मों से मुक्ति नहीं।
श्रेष्ठ अर्थ और कामों से, शुभ फल आत्मा यह भोग रहीं।।

११. संभूत जान अति भाग्यवान, अति-ऋद्धियुक्त शुभ फलवाला।
इस चित्तजीव को भी राजन्! जानो यों कान्ति ऋद्धि वाला।।

१२. वहु अर्थ स्वल्प शब्दों वाली, गाथा गायी मुनि जनगण में।
अर्जन करते मुनि शील-गुणी, सुन मैं भी श्रमण बना क्षण में।।

१३. उच्चोदय कर्क मध्य ब्रह्मा, मधु रम्यावास सजे सारे।
धन धान्य भरा घर भोग करो, पांचालक गुण शोभा धारे।।

१४. तुम नाट्य गीत और वाद्य सहित, नारी जन से परिवृत होकर।
भोगो इन भोगों को भिक्षो! लगती मुनिता मुझको दुःखकर।।

१५. पूर्व प्रेम से अनुरागी, अतिशय कामी उस भूधर को।
धर्माश्रित उसका हित चिन्तक, यों कहा चित्त ने नृप वर को।।

१६. हैं सारे गीत विलाप तुल्य, हैं विडम्बना नाटक सारे।
हैं आभूषण सब भार यहाँ, दुःखदायी काम-भोग सारे।।

१७. बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं !
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥

१८. नरिंद ! जाई अहमा नराणं, सोवागजाइं दुहओ गयाणं ।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेस्सा, वसीअ सोवागनिवेसणेसु ॥

१९. तीसे य जाईइ उ पावियाए, वुच्छामु सोवागनिवेसणेसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरे कडाइं ॥

२०. सो दाणि सिं राय ! महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्ण फलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं, आदाणहेउं अभिणिक्खमाहि ॥

२१. इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो ।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंसिलोए ॥

२२. जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अंतकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मं सहरा[1] भवंति ॥

२३. न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥

२४. चिच्चा दुप्पयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धणधण्णं च सव्वं ।
सकम्मवीओ[2] अवसो पयाइ, परं भवं सुंदरं पावगं वा ॥

२५. तं इक्कगं तुच्छसरीरगं से, चिईगयं दहिउं पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य, दायारमन्नं अणुसंकमंति ॥

---

१. 'तम्मिऽसहरा' यह पाठान्तर भी उपलब्ध होता है ।

२. 'स्वकर्म द्वितीयः' इत्यर्थः ।

१७. बाल-मनोहर दु:खदायी, कामों में वह सुख कहीं नहीं।
जो काम-विरत उस तपोधनी, भिक्षुक को सुख प्राप्त यहीं ॥

१८. अधम जाति चाण्डाल मनुज की, उसमें हम दोनों जन्म लिए।
हम बसे वहाँ सबसे निन्दित हो, चाण्डाल कुलों में कर्म किए ॥

१९. उस पाप युक्त चाण्डाल जाति में, जन्म वास हमने पाया।
सब जन के घृणापात्र होकर, इस भव में संचित फल पाया ॥

२०. महाभाग हे भूप ! यहाँ अब, पुण्य फलोचित पद पाकर।
दीक्षा के हेतु बढ़ो आगे, नश्वर भोगों को ठुकरा कर ॥

२१. अस्थिर इस जीवन में भूधर ! जो अतिशय पुण्य न कर पाता।
बिना धर्म के मरणकाल, और परभव में है पछताता ॥

२२. ज्यों सिंह पकड़ ले जाता मृग को, त्यों मृत्यु मनुज को ले जाती।
ना माता भाई और पिता, उस क्षण में होते हैं साथी ॥

२३. पुत्र मित्र या बन्धु जाति जन, उस दु:ख में भाग नहीं करते।
स्वयं अकेला दु:ख भोगे नर, कर्त्ता के फल पीछे चलते ॥

२४. द्विपद चतुष्पद क्षेत्र भवन धन, धान्य और माया तजकर।
परभव में सुख दु:ख पाने को, वह जाता कर्म विवश बनकर ॥

२५. वह तुच्छ देह चिता पर रखके, पावक से उसे जलाते हैं।
पत्नी पुत्र बन्धु जन सब, फिर अन्य दातृ संग जाते हैं ॥

२६. उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं !
पंचालराया ! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं ॥

२७. अहं पि जाणामि जहेह साहू !, जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ।
भोगा इमे संगकरा हवंति, जे दुज्जया अज्जो ! अम्हारिसेहिं ॥

२८. हत्थिणपुरम्मि चित्ता !, दट्ठूणं नरवइं महिड्ढियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं, नियाणमसुहं कडं ॥

२९. तस्स मे अपडिक्कंतस्स, इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥

३०. नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं ।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ॥

३१. अच्चेइ कालो तूरन्ति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥

३२. जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं !
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी ॥

३३. न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धो सि आरम्भपरिग्गहेसु ।
मोहं कओ इत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि रायं ! आमंतिओ सि ॥

३४. पंचालराया वि य बंभदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं ।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥

२६. सतत कर्म यह जीवन हरता, जरा कान्ति का हरण करें।
पांचालराज ! यह वचन श्रवणकर, मत अति कर्मों का बन्धन करें ।।

२७. मुनिवर जैसा तुम बोल रहे, मैं भी तो वैसा जान रहा।
ये भोग रागवर्धक होते, हम से दुर्जय, मन मान रहा ।।

२८. नगर हस्तिनापुर में मैंने, देखा षट्खण्ड धनी राया।
तब काम भोग से मूर्छित हो, संकल्प भोग का करवाया ।।

२९. किया न दोष का प्रतिक्रमण, मैंने उसका यह फल पाया।
जान धर्म को, काम भोग में, मूर्छित मन हो ललचाया ।।

३०. जैसे कीचड़ में फँसा हाथी, तट देख न वहाँ पहुँच पाता।
वैसे भोगों में लीन बना, मैं भिक्षु मार्ग न अपना पाता ।।

३१. जाता समय रात्रियां जातीं, भोग पुरुष के नित्य नहीं।
मिल कर भोग तजे नर को, ज्यों फलहीन वृक्ष पर खग[1] रहे नहीं ।।

३२ राजन ! यदि भोग न तज सकते, तो आर्यकर्म कुछ कर डालो।
धर्मस्थित हो बन प्रजा हितैषी, जिससे सुर का शुभ पद पा लो ।।

३३. ना भोग त्याग की मति तेरी, आरम्भ-परिग्रह मूर्छित हो।
तो व्यर्थ प्रलाप किया मैंने, जाता हूँ भूप ! उपेक्षित हो ।।

३४. पाञ्चाल भूप वह ब्रह्मदत्त, मुनिवर का वचन अवमानित कर।
गया अनुत्तर[2] नरक बीच, अतिशय भोगों का अनुभव कर ।।

---

१. पक्षी २. सातवीं नरक भूमि

३५. चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उदग्गचारित्ततवो महेसी।
अणुत्तरं संजमं पालइत्ता, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ–त्ति बेमि ॥

अट्ठाईसवां अध्ययन–मोक्षमार्गगति

१. मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं, नाणदंसणलक्खणं ॥

२. नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

३. नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा।
एयमग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं ॥

४. तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं।
ओहिनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं ॥

५. एयं पंचविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाण य सव्वेसि, नाणं नाणीहि देसियं ॥

६. गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥

७. धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

८ धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गलजंतवो ॥

३५. काम भोग से विरत चित्त भी, उग्रतपस्वी महा व्रतधारी।
निर्दोष विरति का पालन कर, हो गए सिद्धि गति अधिकारी ॥

२८वां अध्ययन—मोक्ष-मार्ग-गति

१. मोक्ष मार्ग की सत्य गति, जिन-भाषित भाई सुन लेना।
चार कारणों से संयुत, सद्ज्ञान दर्श लक्षण धरना ॥

२. श्रद्धा ज्ञान चारित्र और, चौथा कारण है तप जानो।
यह मार्ग बताया जिनवर ने, निर्दोष ज्ञान उनका मानो ॥

३. ज्ञान और श्रद्धा संयम, तप कारण चौथा बतलाया।
इस पथपर चलकर जीव सुगति, वर पाते जिनवर ने गाया ॥

४. मार्ग चतुष्टय में पहला है, ज्ञान पंचविध बतलाया।
आभिनिवोधिक श्रुत और अवधि, मनपर्यव केवल मनभाया ॥

५. सब द्रव्य और गुण पर्यायें, ज्ञातव्य जगत में तीन सही।
इन सबको जाने जिस गुण से, है ज्ञान पंचविध पूर्ण वही ॥

६. है द्रव्य गुणों का जो आश्रय, द्रव्याश्रित विध-विध गुण होते।
जो द्रव्य और गुण के आश्रित, पर्याय रूप वे कहलाते ॥

७. धर्म-अधर्म, नभ, काल और, पुद्गल, चेतन को द्रव्य कहा।
वरदर्शी जिनवर बतलाते, षड्द्रव्य रूप ही लोक यहाँ ॥

८. धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य, ये एक-एक ही बतलाये।
है जीव, काल, पुद्गल तीनों, ये द्रव्य अनन्त जग में छाये ॥

९. गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो ।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं ।।

१०. वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो ।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ।।

११. नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ।।

१२. सद्दंधयार-उज्जोओ, पभा छायातवोऽऽइ वा ।
वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ।।

१३. एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य ।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ।।

१४. जीवाजीवा य बंधो य पुण्णं पावाऽसवो तहा ।
संवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव ।।

१५. तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ।।

१६. निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त–बीयरुइमेव ।
अभिगम वित्थाररुई, किरिया–संखेव धम्मरुई ।

१७. भूयत्थेणाहिगया, जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।
सहसम्मुइयासवसंवरो य, रोएइ उ निस्सग्गो ।।

१८. जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव नन्नह त्ति य, स निसग्गरुई त्ति नायव्वो ।।

९. गतिलक्षण वाला धर्म कहा, स्थिति लक्षण अधर्म है बतलाया।
सब द्रव्यों का भाजन नभ है, अवकाशदान गुण कहलाया।।

१०. वर्तना काल का लक्षण है, उपयोग जीव का है लक्षण।
सुख-दुःख ज्ञान-दर्शन गुण से, जीवस्वभाव का है रक्षण।।

११. है दर्शन ज्ञान चारित्र तपस्या, और शक्ति उपयोग जहाँ।
चैतन्य गुणों का वास देख, लक्षण से मानो जीव वहाँ।।

२. शब्द तिमिर उद्योग-प्रभा, छाया आतप रस वर्ण तथा।
स्पर्श गन्ध ये पुद्गल के, लक्षण हैं जग में कहे यथा।।

३. एकत्व जुदाई या संख्या, आकार रूप है पुद्गल के।
मिलना वियुक्त होना जानो, लक्षण पुद्गल पर्यायों के।।

४. जीव अजीव बन्ध आस्रव, और पुण्य पाप दो बतलाये।
और मोक्ष निर्जरा संवर को, नव तत्व रूप में हैं गाये।।

५. यथाभूत इन भावों का, सत्यार्थ कथन है जिनवर का।
अन्तर्मन से श्रद्धा करता, सम्यक्त्व मार्ग है शिवपद का।।

६. निसर्ग वा उपदेशरुचि, आज्ञा – श्रुत – बीजरुचि वैसे।
अभिगम विस्तार क्रिया अष्टम, संक्षेप धर्मरुचि है ऐसे।।

७. उपदेश बिना जो ज्ञान करे, जड़ चेतन कर्म शुभाशुभ का।
निज मति से आस्रव संवर में, हो भाव सहज सद्दर्शन का।।

८. जो द्रव्यादिकजनदृष्ट चतुर्विध, भाव स्वयं ही मान्य करे।
है सत्य वही प्रभु बतलाया, यों निसर्गमति मन भाव धरे।

१६ एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई ।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥

२०. रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नामं ॥

२१. जो सुत्तमहिज्जंतो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।
अंगेण बाहिरेण य सो सुत्तरुई त्ति नायव्वो ॥

२२. एगेण अणेगाइं, पयाइं जो पसरई उ सम्मत्तं ।
उदए व्व तेल्लबिंदू, सो बीयरुई त्ति नायव्वो ॥

२३. सो होइ अभिगमरुई, सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं ।
एक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥

२४. दव्वाण सव्वभावा सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा ।
सव्वाहिं नयविहीहिं, वित्थाररुई त्ति नायव्वो ॥

२५. दंसणनाणचरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु ।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥

२६. अणभिग्गहियकुदिट्ठी, संखेवरुई त्ति होई नायव्वो ।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥

२७. जो अत्थिकाय-धम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुई त्ति नायव्वो ॥

२८. परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावन्नकुदंसणवज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥

१६. जिनवर या छद्मस्थ किसी से, कथित भाव को जो माने।
उपदेशजन्य उस श्रद्धा को, उपदेशरुचि ज्ञानी जाने।।

२०. अज्ञान मोह और राग द्वेष, जिसका जग में मिट जाता है।
रखता रुचि जो उस आज्ञा में, वह आज्ञारुचि कहलाता है।।

२१ जो पढ़कर अंग सूत्र अथवा, श्रुत अंग बाह्य से ज्ञान करे।
सूत्रों से श्रद्धा करता वह, है सूत्ररुचि यह ज्ञात करे।।

२२. जो एक सूत्र पद से नाना, वचनों में सम्यक् भाव धरे।
जल में तैल बिन्दु सम वह, बीजरुचि यह नाम धरे।।

२३. अर्थरूप जिसने श्रुत को, देखा वह अभिगम रुचिवाला।
अंग इग्यारह और प्रकीर्णक, दृष्टिवाद की मतिवाला।।

२४. द्रव्यों के सब भावों को, जो सकल प्रमाणों से जाने।
सम्पूर्ण नयों से ज्ञान करे, विस्ताररुचि वह मुनि माने।।

२५. दर्शन ज्ञान चारित्र विनय तप, समिति गुप्ति जो मन धरता।
जो चरण भाव में रुचि रखता, है वही क्रिया रुचि कहलाता।।

२६. निष्णात न जो जिन शासन में, परमत का जिसको ज्ञान नहीं।
मन में कुदृष्टि ने घर न किया, संक्षिप्तरुचि है जान वही।।

२७ जो अस्तिकाय का धर्म और, श्रुत चरण धर्म का ज्ञान करे।
जिन कथित भाव पर हो श्रद्धा, वह धर्मरुचि बन जग विहरे।।

२८. परमार्थ भाव का परिचय हो, परमार्थ विज्ञ की भक्ति करे।
सम्यक्त्व भ्रष्ट वा मिथ्या मत, वर्जन कर श्रद्धा में विचरे।।

२९. नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मत्तचरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥

३०. नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥

३१. निस्संकिय-निक्कंखिय-निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्लपभावणे अट्ठ ॥

३२. सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं ।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥

३३. अकसायमहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ॥

३४. तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ॥

३५. नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥

३६. खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो–त्ति बेमि ॥

---

२९. सम्यक्त्व बिना चारित्र नहीं, चारित्र विकल्पित दर्शन में।
सम्यक्त्व और चारित्र संग, अथवा सम्यक्त्व पूर्व पद में॥

३०. अदर्शनी को ज्ञान नहीं, और ज्ञान बिना गुण चरण नहीं।
निर्गुण को मिलती मुक्ति नहीं, और बिना मोक्ष की शान्ति नहीं॥

३१. शंका कांक्षा विचिकित्सा तज, एवं अमूढ़दृष्टि वाला।
उपबृंहण और स्थिरीकरण, वात्सल्य प्रभावन मन वाला॥

३२. चारित्र प्रथम है सामायिक, दूजा छेदोपस्थापन है।
परिहार विशुद्ध है तपसाधन, चौथा कषाय अतिशय लघु है॥

३३. यथाख्यात निर्मोह भाव, छद्मस्थ तथा जिनको होता।
करता संचित है कर्मरिक्त, चारित्र वही है कहलाता॥

३४. अन्तर बाह्य भेद दो तप के, वीर प्रभु ने बतलाये।
है छः प्रकार का बाह्य और, आन्तर तप भी षड्विध गाये॥

३५. है ज्ञान तत्व को जतलाता, दर्शन से श्रद्धा पाता है।
चारित्र कर्म का रोध करे, तप से संचित क्षय होता है॥

३६. संयम से आते कर्म रोक, संचित तप से क्षय करते हैं।
सकल दुःख क्षय करने को, ऋषिवर बलवीर्य लगाते हैं॥

(४)

वीरत्थुई

(सूयगडांग सूत्र–छठा अध्ययन)

१. पुच्छिस्सु णं समणा माहणा य, अगारिणो य परतित्थिया य ।
से केई णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥

२. कहं च णाणं कहं दंसणं से, सीलं कहं णायसुयस्स आसी ।
जाणासि णं भिक्खु ! जहातहेणं, अहासुयं बूहि जहा णिसंतं ॥

३. खेयन्नए से कुसले महेसी[1], अणंतणाणी य अणंतदंसी ।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स, जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥

४. उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥

५. से सव्वदंसी अभिभूय णाणी, णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्व-जगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥

---

१. 'खेयन्नए से कुसलासुपन्ने' यह पाठान्तर भी मिलता है ।

(४)

वीर स्तुति

(सूत्र कृतांग सूत्र, छठा अध्ययन)

१. "मुझसे श्रमण, ब्राह्मण, गृहस्थ और अन्यमतावलम्बी जन पूछते हैं कि इस संसार से तिरानेवाला एकान्त हितकारी और अनुपम धर्म किसने कहा है?" इस प्रकार श्री जम्बूस्वामी ने आर्य सुधर्म गणधर से पूछा।

२. "उन भ० महावीर का ज्ञान दर्शन कैसा था? उनका आचार कैसा था? हे भगवन्! आप इस विषय में यथातथ्य जानते हैं और सुना भी है, सो कृपा करके मुझे भी बताइये।"

३. "हे जम्बू! भ० महावीर संसारी जीवों के दुःखों को जानने में कुशल थे। वे महायशस्वी भगवान्, अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शी और महान् ऋषि थे। उनको अर्हन्त दशा में सूक्ष्म पदार्थ भी आँखों के समान देखनेवाले जानो और उनके धर्म तथा संयम की दृढ़ता को विचारो।

४. उन केवलज्ञानी भगवान् ने ऊँची, नीची और तिरछी दिशा में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनको नित्य और अनित्य रूप से जानकर, उनके आधार के लिये धर्मरूपी द्वीप का सम्यग् रूप से प्रतिपादन किया है।

५. वे सर्वदर्शी भगवान् अप्रतिहत केवलज्ञानवाले और निर्दोष चारित्रवाले थे। वे परम धीर प्रभु अपनी आत्मा में स्थिर, परिग्रह से रहित, निर्भय, आयु रहित और समस्त पदार्थों के उत्कृष्ट ज्ञाता थे।

६. से भूइपण्णे अणिए अचारी, ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सूरिए वा, वइरोयणिंदे व तमं पगासे ॥

७. अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदे व देवाण महाणुभावे, सहस्स णेता दिविणं विसिट्ठे ॥

८. से पन्नया अक्खयसायरे वा, महोदही वावि अणंतपारे ।
अणाइले वा अकसाइ मुक्के, सक्के व देवाहिवई जुईमं ॥

९. से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे ।
सुरालए वासि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए ॥

१०. सयं सहस्साण उ जोयणाणं, तिकंडगे पंडगवेजयंते ।
से जोयणे णवणवते सहस्से, उद्धुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं ॥

११. पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ।
से हेमवन्ने बहुणंदणे य, जंसी रइं वेदयंति महिंदा ॥

१२. से पव्वए सद्दमहप्पगासे, विरायई कंचणमट्ठवन्ने ।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरिवरे से जलिए व भोमे ॥

६. वे महान् बुद्धिमान् प्रभु, अप्रतिबद्ध विहारी, संसार समुद्र से तिरने वाले, परम धीर और अनन्त ज्ञानवान् थे। वे सूर्य एवं वैरोचन अग्नि की तरह अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करके ज्ञान का प्रकाश करनेवाले थे।

७. जैसे हजारों देवों में इन्द्र, रूप, गुण और ऐश्वर्य में प्रधान होता है, वैसे वे जिनेश्वरों के धर्म के सर्वोत्तम नेता थे।

८. जिसका पार नहीं पा सकें ऐसे स्वयंभूरमण महासमुद्र के शुद्ध एवं अक्षय जल की भांति भगवान् की प्रज्ञा विशुद्ध और अनन्त थी। वे कषायों से रहित, कर्मों से मुक्त तथा देवाधिपति शक्रेन्द्र की तरह दीप्तिमान् थे।

९. जिस प्रकार सब पर्वतों में सुदर्शन पर्वत श्रेष्ठ एवं देवों को हर्ष उत्पन्न करने वाला है, उसी प्रकार भगवान् अपने परिपूर्ण सामर्थ्य से, सब जीवों में श्रेष्ठ और सब को हर्ष उत्पन्न करने वाले थे।

१०. सुमेरु पर्वत एक लाख योजन का है। उसके तीन भाग हैं। पाण्डुक वन उसकी ध्वजा रूप है। वह एक हजार योजन पृथ्वी में नीचे और निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है।

११. वह पर्वतराज, भूमि पर स्थित होकर आकाश को स्पर्श कर रहा है। सूर्य जिसकी प्रदक्षिणा करते हैं। जो सोने के समान कान्ति वाला है, जिस पर बहुत से (चार) नन्दन वन हैं, तथा देवेन्द्र जहां आकर रति सुख का अनुभव करते हैं।

१२. वह पर्वत, शब्दों से गुंजायमान है। सोने के वर्णों से सुशोभित हो रहा है। वह सब पर्वतों में श्रेष्ठ होकर पर्वत-मेखलादि के कारण दुर्गम है और भूमिपर दीपायमान हो रहा है।

१३. महीइ मज्झम्मि ठिए णगिंदे, पन्नायते सूरिय सुद्धलेसे ।
एवं सिरीए उ स भूरिवण्णे, मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥

१४. सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसणनाणसीले ॥

१५. गिरिवरे वा निसहाऽऽययाणं, रुयए व सेट्ठे वलयायताणं ।
तओवमे से जगभूइपन्ने, मुणीण मज्झे तमुदाहु पन्ने ॥

१६. अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरं झियाइं ।
सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं, संखिंदुएगंतवदातसुक्कं ॥

१७. अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता ।
सिद्धिं गए साइमणंत पत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण ॥

१८. रुक्खेसु णाए जह सामली वा, जस्सि रतिं वेदयंती सुवन्ना ।
वणेसु वा नंदणमाहु सेट्ठं, नाणेण सीलेण य भूइपन्ने ॥

१९. थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चंदो व ताराण महाणुभावे ।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥

१३. पृथ्वी के मध्य में रहा हुआ वह पर्वतेन्द्र, सूर्य के जैसा शुद्ध तेजोवन्त, अनेक प्रकार की लक्ष्मी युक्त और अनेक रत्नों से सुशोभित होकर सूर्य की तरह दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ लोक में प्रसिद्ध है।

१४. जिस प्रकार महान्, सुदर्शन पर्वत का यश कहा गया है, उसी प्रकार–इन उपमाओं से श्रमण ज्ञातपुत्र भी जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील में सबसे उत्तम थे।

१५. जैसे लम्बे पर्वतों में निषध और गोल पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ हैं, वैसे ही भ० महावीर भी संसार में प्रभूत प्रज्ञावाले हैं। बुद्धिमानों ने उन्हें सभी मुनियों के मध्य में उत्कृष्ट कहा है।

१६. भगवान् ने ऐसे ही धर्म का उपदेश किया जो समस्त धर्मों में श्रेष्ठ है। उन्होंने प्रधान शुक्लध्यान ध्याया, जो अर्जुन, सोने, जल फेन, शंख और चन्द्रमा की तरह स्वच्छ है।

१७. वे महर्षि, ज्ञान दर्शन और चारित्र से समस्त कर्मों को क्षय करके, सर्वोच्च लोकाग्र में स्थित होकर, सर्वोत्तम सादि अनन्त सिद्धि को प्राप्त हुए।

१८. जिस प्रकार वृक्षों में शाल्मली वृक्ष और वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ समझा जाता है, जिस पर सुवर्णकुमार देव, रति क्रीड़ा का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार भगवान् ज्ञान और चारित्र से श्रेष्ठ तथा अत्यन्त ज्ञानी कहे जाते हैं।

१६. जिस प्रकार शब्दों में मेघ की गर्जना प्रधान है, तारागणों में चन्द्रमा मनोहर है और सुगन्धित पदार्थों में चन्दन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त मुनियों में, समस्त वासनाओं से रहित भगवान् श्रेष्ठ थे।

२०. जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे, नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे।
खोओदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणि वेजयंते॥

२१. हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादी णिह णायपुत्ते॥

२२. जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे॥

२३. दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।
तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते॥

२४. ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा, सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
निव्वाण सेट्ठा जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि नाणी॥

२५. पुढोवमे धुणइ विगयगेही, न संणिहिं कुव्वइ आसुपन्ने।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खू॥

२६. कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा।
एआणि वंता अरहा महेसी, ण कुव्वई पाव ण कारवेइ॥

२७. किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं।
से सव्ववायं इति वेयइत्ता, उवट्ठिए संजम दीहरायं॥

२०. जैसे समुद्रों में स्वयंभूरमण, नागकुमारों में धरणेन्द्र और रसों में इक्षुरस श्रेष्ठ है, वैसे ही तपस्वियों में भगवान् श्रेष्ठ थे ।

२१. जैसे हाथियों में ऐरावत, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षियों में वेणुदेव-गरुड़ प्रधान हैं, उसी प्रकार समस्त निर्वाण (मोक्ष) वादियों में भगवान् महावीर श्रेष्ठ थे ।

२२. योद्धाओं में चक्रवर्ती, पुष्पों में अरविंद कमल और क्षत्रियों में दन्तवाक्य-चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, उसी तरह समस्त ऋषियों में भगवान् वर्द्धमान श्रेष्ठ हैं।

२३. जैसे दानों में अभयदान, सत्य में निवद्य भाषा और तप में ब्रह्मचर्य उत्तम कहा जाता है, उसी प्रकार वे ज्ञातपुत्र समस्त लोक में उत्तम थे ।

२४. यद्यपि आयु में अनुत्तर विमान के देव, सभाओं में इन्द्र की सौधर्म सभा, और सब धर्मो में निर्वाण—मोक्ष धर्म श्रेष्ठ है, किन्तु भगवान् महावीर से उत्तम ज्ञानी तो कोई नहीं है ।

२५. वे पृथ्वी के समान धीर एवं सहनशील थे, उन्होंने सब कर्मो को दूर कर दिया था । वे द्रव्यादि का संचय नहीं करते थे, वे अनन्त ज्ञानी, समस्त जीवों को अभय देने वाले होकर संसार सागर को तिर गये ।

२६. भगवान् क्रोध, मान, माया और लोभरूप आत्मिक दोषों को त्याग कर अर्हन्त महर्षि हुए । उन्होंने न स्वयं पाप किया, न दूसरों से करवाया ।

२७. भगवान् क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद के पक्षों को जानकर तथा समस्त वादों के पक्ष को सम्यक् प्रकार से समझकर जीवन पर्यन्त संयम में सावधान रहे ।

२८. भगवान् ने समस्त दुःखों को क्षय करने के लिये स्त्री सम्भोग तथा रात्रि भोजन आदि पापों को त्याग दिया और वे इस लोक तथा परलोक को जानकर सबका त्याग करके घोर तपस्वी हुए।

२९. जो मनुष्य, अर्हन्त भगवान् द्वारा कहे हुए अर्थ और पदों से शुद्ध ऐसे धर्म को सुनकर, उस पर सम्यक् प्रकार से श्रद्धा करते हैं, वे आयु और कर्म से रहित होकर सिद्ध हो जाते हैं अथवा इन्द्रादि देव होते हैं और भविष्य में भी होंगे–ऐसा मैं कहता हूं।"

(५)

उपसर्गहर स्तोत्र

१. उपसर्ग के निवारक, पार्श्व यक्ष से सेवित एवं कर्मों से मुक्त श्री पार्श्वनाथ की मैं वन्दना करता हूं, जो विषधर के विष को नष्ट करने वाले और मंगल एवं कल्याण के स्थान हैं।

२. ॐ विसहर फुल्लिग नाम का मंत्र जिसे कंठस्थ है, उसके दुष्ट ग्रह, रोग, शत्रु आदि उपशान्त हो जाते हैं।

३. मंत्र तो दूर रहा, हे प्रभो ! तुम्हें किया गया प्रणाम भी अत्यधिक फल-वाला होता है। इसके प्रभाव से मनुष्य एवं तिर्यंच गति में भी जीव दुःख नहीं पाता।

४. चिन्तामणि और कल्पवृक्ष से भी अधिक लाभकारी तुम्हारा सम्यग्दर्शन पा लेने पर जीव विना किसी विघ्न बाधा के सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं।

५. इअ संथुओ महायस ! भत्तिब्भर – निब्भरेण हियएण ।
ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास जिणचंद ॥

(६)

तिजय पहुत्त स्तोत्र

(आचार्य श्री मानदेव रचित)

१. तिजय पहुत्त – पयासय, अट्ठमहापाडिहेर जुत्ताणं ।
समय खित्त ठियाणं, सरेमिचक्कं जिणंदाणं ॥

२. पणवीसा य असीया, पनरस पन्नास–जिणवर – समूहो ।
नासेउ सयल दुरियं, भविआणं भत्तिजुत्ताणं ॥

३. वीसा पणयालाविय, तीसा पन्नत्तरि जिणवरिंदा ।
गह भूअ रक्ख – साइणि, घोरुवसग्गं पणासंतु ॥

४. सत्तरि पणतीसाविय, सट्ठी पंचेव जिणगणो एसो ।
वाहि – जल – जलण – हरि, करिचोरारि महाभयं हरउ ॥

५. पणपन्ना य दसेव य, पन्नट्ठी तह य चेव चालीसा ।
रक्खंतु मे सरीरं, देवासुर पणमिआ सिद्धा ॥

५ इस प्रकार भक्ति-भाव से ओतप्रोत, मन से स्तुति किये गये हे महायशस्वी प्रभो ! हे जिनचन्द्र पार्श्वदेव ! भव-भवान्तर तक मुझे बोधि सम्यग्दर्शन प्रदान करते रहो, जब तक मैं सिद्ध पद न पा लूं ।

(६)

तिजय पहुत्त स्तोत्र

१. तीनों जगत् के ऐश्वर्य को प्रकाशित करने वाले, आठ महाप्रातिहार्यों से युक्त ऐसे समय-क्षेत्र-मनुष्यलोक में स्थित जिनेन्द्रों के मण्डल-चक्र का मैं स्मरण करता हूं ।

२. पचीस, अस्सी, पन्द्रह और पचास अर्थात् १७० तीर्थङ्करों का समूह, भक्ति करने वाले भव्य जीवों के सम्पूर्ण पाप कर्मों का नाश करे ।

३. २०, ४५, ३० और ७५ इस प्रकार १७० जिनेन्द्रदेव, शनि-मंगलादि ग्रह, भूत, राक्षस, व्यन्तर शाकिनी आदि कृत, घोर उपसर्ग को प्रणष्ट करें ।

४. ७०, ३५, ६० और ५, इस प्रकार १७० तीर्थङ्करों का गण शूलादि व्याधि, जल-अग्नि-सिंह-हाथी-चोर और शत्रुरूप इन सात महाभयों को दूर करें।

५. पचपन, दस, पैंसठ और चालीस ये १७० तीर्थङ्कर जो सिद्ध हो चुके हैं, देव और दानवों से वंदित सिद्ध मेरे शरीर की रक्षा करें ।

६. ॐ 'हरहुंहः' 'सरसुंसः', 'हरहुंहः', तहचेव 'सरसुंसः'।
आलिहिअ नाम गब्भं, चक्कं किर सव्वओ भद्दं ॥

७-८. ॐ रोहिणी, पन्नत्ती, वज्जसिंखला, तह य वज्ज-अंकुसिया।
चक्केसरिनरदत्ता, कालि-महाकालि-तह गोरी ॥
गंधारी, महजाला, माणवि-वइरुट्ट-तहय-अच्छुत्ता।
माणसि-महामाणसीया, विज्जादेविओ रक्खंतु ॥

९. पंचदस कम्मभूमिसु, उप्पन्नं सत्तरि जिणाणसयं।
विविह रयणाइवन्नो-वसोहियं हरउ दुरिआइं ॥

१०. चउतीस-अइसयजुआ, अट्ठमहापाडिहेर-कयसोहा।
तित्थयरा गय मोहा, झाएअव्वा पयत्तेणं ॥

११. ओं वरकणय-संख विद्दुम, मरगय-घणसन्निहं विगयमोहं।
सत्तरि सयं जिणाणं, सव्वामर-पूइयं वंदे-"स्वाहा"

१२. ओं भवणवइ-वाणवंतर, जोइसवासी-विमाणवासी य।
जे केवि दुट्ठदेवा, ते सव्वे उवसमंतु मम स्वाहा ॥

६. 'ओं' यह पंच-परमेष्ठि वाचक है तथा "हरहुंहः" इन चार अक्षरों से पद्मा, जया, विजया और अपराजिता इन चारों का ग्रहण होता है। इसी प्रकार "सरसुंसः" ये चार मंत्र-बीज उपसर्ग निवारण के लिए हैं। ये सोलह अक्षर (हरहुंहः सरसुंसः हरहुंहः सरसुंसः) मध्य के खाने (चक्र) को छोड़कर यंत्र के शेष खानों में अनुक्रम से लिखे जाते हैं। मध्य भाग में जहां साधना करने वाले का नाम "ओं" के साथ लिखा होता है, ऐसा यह यन्त्र निश्चय सर्वतोभद्र यन्त्र है।

७–८. यंत्र में ॐ अथवा "ओं ह्रीं श्रीं" इन तीन बीजाक्षरों के साथ सोलह विद्या देवियां (रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशी, चक्रेश्वरी, नरदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गंधारी, महाज्वाला, मानवी, वैरोट्या, अक्षुप्ता, मानसी, महामानसी) हमारी रक्षा करें।

९. पन्द्रह कर्म भूमि क्षेत्रों में उत्पन्न हुए, १७० तीर्थङ्कर, विविध रत्न आदि के वर्णों से उपशोभित हमारे दुरित-पापों को हरण करें—दूर करें।

१०. चौंतीस अतिशयों से युक्त और अष्ट महाप्रातिहार्य से शोभायमान ऐसे मोह रहित श्री तीर्थङ्कर देव प्रयत्नपूर्वक ध्यान करने योग्य हैं।

११. उत्तम सुवर्ण, शंख, मूंगा, मरकतमणि और मेघ के समान वर्णवाले ऐसे मोह रहित तथा सब देवगणों से पूजित एक सौ सत्तर तीर्थङ्करों के मंडल को वन्दन करता हूं।

१२. भुवनपति, व्यंतर ज्योतिश्चक्र में रहने वाले ज्योतिषी तथा विमानवासी जो भी कोई दुष्टदेव हैं, वे सब मेरे लिए उपशान्त हों।

१३. चंदण-कप्पूरेणं फलए, लिहिऊण खालिअं पीअं।
एगंतराइ-गहभूअ- साइणि - मुग्गं पणासेइ ॥

१४. इअ सत्तरिसयं जंतं, सम्मं मंतं दुवारि पडिलिहियं।
दुरियारि विजयवंतं, निब्भंतं निच्चमच्चेह ॥

सर्वतोभद्र यन्त्र

२५ ह	८० र	क्षि	१५ हुं	५०हः
२० स	४५ र	प	३० सुं	७५ सः
क्षि	प	ॐ	स्वा	हा
७० ह	३५ र	स्वा	६० हुं	५ हः
५५ स	१० र	हा	६५ सुं	४० सः

१३. चन्दन और कर्पूर आदि से काष्ठपट्ट पर लिख कर छाया में सुखाकर प्रातः समय खोलकर पीएँ तो एकान्तर ज्वर आदि, ग्रह भूत शाकिनी, मुद्गक आदि बाधाओं को नष्ट करता है।

१४. इस प्रकार एक सौ सत्तर तीर्थङ्करों का यह यन्त्र, सम्यग् मन्त्र सहित द्वार पर लिखा गया पाप और शत्रु पर विजय दिलाने वाला है। अतः बिना संशय के इसका सदा अर्चन करो।

(७)

सुभाषित

१. अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥

२. चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥

३. अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए।
न हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए॥

४. बहिया उड्ढमादाय नावकंखे कयाइ वि।
पुव्वकम्म खयट्ठाए इमं देहं समुद्धरे॥

५. जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मास कयं कज्ज, कोडीए वि न निट्ठियं॥

६. नो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासुऽणेग चित्तासु।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेल्लंति जहा व दासेहिं॥

७. नारीसु नोव गिज्झेज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे।
धम्मं च पेसलं नच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं॥

८. सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसइ जाइ विसेस कोई।
सोवागपुत्ते हरिएस साहू, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥

९. तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्म एहा संजमजोग सन्ती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं॥

(७)

सुभाषित

१. दमन करो अपने ही को कारण आत्मा ही दुर्दम है।
इस भव परभव में सुख पाता जो स्वात्म दमन में सक्षम है ॥

२. परम अंग जग में ये दुर्लभ, चार मोक्ष के साधन हैं।
मनुज जन्म एवं श्रुति श्रद्धा, संयम में शक्ति लगाना है ॥

३. अपने सम देखो सब जन को, सुख और आयु सबको हैं प्यारे।
भय वैरों से उपरत हो, मत बनो जन-जीवों के हत्यारे ॥

४. उच्च लक्ष्य वर मोक्ष प्राप्ति का, विषयों की कांक्षा करें न कभी।
संचित कर्मों का क्षय करने हेतु, इस तन को धारण करें सभी ॥

५. जैसा लाभ लोभ भी वैसा, लोभ लाभ से बढ़ता है।
दो मासे का कार्य लोभवश, नहीं क्रोड़ों से पूरा पड़ता है ॥

६. नारी मात्र से प्रीति करो ना, हृदय गांठ, अरु चित्त चपल।
जो बना पुरुष को दास रूप, फिर खेला करती है प्रतिपल ॥

७. नारी तन पर ना प्रीति करे, स्त्री त्यागी जो अनगारी।
त्यागधर्म को श्रेष्ठ जान, भिक्षुक रक्खे मन में स्थिरता भारी ॥

८. साक्षात् दीखती है, तप महिमा नहीं जाति विशेष की महिमा भाई।
चाण्डाल सुत हरिकेशी साधु में, तप और तेज की गरिमा पाई ॥

९. है तपोज्योति शुभस्थान जीव, कड़छी योग कण्डा है यह तन।
कर्म इन्धन, संयम शांतिपाठ से, करता है मुनि का यह श्रेष्ठ यजन ॥

१०. धम्मे हरए बंभे सन्तितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिं सिण्हाओ विमलो विसुद्धो सुसीइभूओ पजहामि दोसं ॥

११. जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥

१२. देव दाणव गन्धव्वा जक्ख–रक्खस किन्नरा।
बम्भयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करन्ति तं ॥

१३. जहा गेहे पलित्तम्मि तस्स गेहस्स जो पहू।
सारभंडाणि नीणेइ असारं अवउज्झइ ॥

१४. एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ॥

१५. अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा घेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥

१६. अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥

१७. एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥

१८. जरामरणवेगेणं वुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमं ॥

१९. सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरन्ति महेसिणो ॥

१०. ब्रह्म शांति का तीर्थ धर्म ह्रद, स्वच्छ मुदित लेश्यावाला।
जिसमें नहा दोष को छोड़ूं, विमल शीत शुचि गुणवाला।।

११. जो जो रात बीत जाती है, वह न लौटकर वापस आती।
करते अधर्म जो जन जग में, उनकी सभी रातें विफल जातीं।।

१२. देव असुर गंधर्व यक्ष, राक्षस किन्नर सब नमन करें।
ब्रह्मव्रती साधक को जग में, दुष्कर व्रत जो चित्त धरें।।

१३. जैसे आग लगे घर में, उस घर का जो स्वामी होता।
घर में ही छोड़ असार वस्तु को, सार वस्तु बाहर ले आता।।

१४. जरा मरण की प्रबल आग से, जल रहा यह जगत् सारा।
अपने को पार लगाऊंगा, आदेश आपका ले प्यारा।।

१५. आत्मा है सरिता वैतरणी, है कूट शाल्मली तरु यही।
आत्मा मेरी है कामधेनु, नन्दन कानन भी बनी वही।।

१६. आत्मा कर्त्ता और विकर्त्ता, दुख और सुख का है जग में।
आत्मा सन्मार्गी का सहचर, और शत्रु है निन्दित मग में।।

१७. एक विजय से पांच विजित, और पंच विजय से दस जीते।
उन दस पर विजय मिलाने से सारे अरि हैं हमने जीते।।

१८. जरा मरण के वेगों की पीड़ा से आहत जीवों के।
है धर्म प्रतिष्ठा द्वीप और गति रक्षक उत्तम प्राणी के।।

१९. कहा है शरीर को नाव यहां, चालक इसका है जीव कुशल।
सागर संसार को कहा जग में, तरते ऋषि जिनका आत्मसबल।।

२०. न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो॥

२१. समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥

२२. कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्से कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

२३. उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई॥

२४. सारं दंसणनाणं, सारं तव नियम सीलं।
सारं जिणवरधम्मं, सारं संलेहणा मरणं॥

२५. मज्जं विसयकसाया, निद्दा विकहा य पंचमी भणिया।
एए पंच पमाया, जीवा पाडंति संसारे॥

२६. लब्भंति विमला भोए, लब्भंति सुर सम्पया।
लब्भंति पुत्तमित्तं च एगो धम्मो न लब्भइ॥

२७. रागो य दोसो वि य कम्मवीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं, दुक्खं च जाईमरणं वयंति॥

२८. दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं।

२९. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेन्ति भावेण।
अमला असंकिलिट्ठा, ते हुंति परित्त संसारी॥

२०. शिर मुण्डन से होते न श्रमण, ओंकार जपे ना द्विज होते।
वनवास मात्र से होते न मुनि, कुश वल्कल से न तापस होते॥

२१. समता धारण से श्रमण कहाते, है ब्रह्मचर्य से सद्ब्राह्मण।
ज्ञानाराधन से मुनि होता, तापस होता करे तप साधन॥

२२. कर्मों से ब्राह्मण होता है, कर्मों से क्षत्रिय कहाता है।
है वैश्य कर्म से ही होता, और शूद्र कर्म से बनता है॥

२३. भोगों से बन्धन होता है, होता न बन्धन जो भोग रहित।
भोगी संसार भ्रमण करता, होता विमुक्त जो भोग रहित॥

२४. ज्ञान दर्शन सार है, सार है तप नियम और शील।
जिनवर धर्म ही सार है, सार है संलेखणापूर्वक मरण॥

२५. मद्य विषय कषाय, निद्रा और पंचम है विकथा कही।
ये पांच प्रमाद कहलाते जो संसार भ्रमण के कारण हैं सही॥

२६. सरल है प्राप्त करना उत्तमोत्तम कामभोग एवं देव सम्पद्।
पुत्र मित्र भी सरल है प्राप्त करना पर कठिन है प्राप्त करना धर्मसंपद॥

२७. हैं रागद्वेष दो कर्म बीज, और कर्म मोह से होता है।
है जन्म मरण का मूल कर्म, जन्म मरण दुख कहलाता है॥

२८. जिसको न मोह है दुख मिटा, नष्ट मोह तृष्णा न जिसे।
तृष्णा मिटी तो लोभ नहीं, जब लोभ गया कुछ भी न उसे॥

२९. जिनवाणी में अनुरक्त, अरु जिन वचनों पर जो चलते हैं।
निर्मल क्लेप रहित हो वे, सीमित भवसागर हो रहते हैं॥

(८)

सम्यक्त्व का स्वरूप और फल

१. अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥

२. कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ॥

३. जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहन्ते, अयाणमाणेवि सम्मत्तं ॥

४. सव्वाइं जिणेसर भासिआइं, वयणाइं नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धि जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥

५. अंतोमुहुत्तमित्तंपि, फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गल, परियट्टो चेव संसारो ॥

६. गहिऊण य सम्मत्तं, सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंपं ।
तं झाणे झाइज्जइ, सावय ! दुक्खक्खयट्ठाए ॥

७. ते धण्णा सुकयत्था, ते सूरा तेवि पंडिया मणुया ।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥

८. किं बहुणा भणिएणं, जे सिद्धा णरवरा एगकाले ।
सिज्झिहहि जे भविया, तं जाणह सम्मत्त माहप्पं ॥

(६)

सामायिक का स्वरूप एवं फल

१ जस्स समाहिओ अप्पा, संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं॥

२. जो समो सव्व भएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं॥

३. मण-वय-तणुहि करणे, कारवणम्मि य सपावजोगाणं।
जं खलु पच्चक्खाणं, तं सामाइयं मुहुत्ताइं॥

४. सामाइयम्मि उ कए, समणो व्व सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेणं वहुसो सामाइयं कुज्जा॥

५. जीवो पमायवहुलो, बहुसो वि य बहुविहेसु अत्थेसु।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा॥

६. दिवसे दिवसे लक्खं, देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो।
एगो पुण सामाइयं, करेइ ण पहुप्पए तस्स॥

७. सामाइयं कुणन्तो समभावं, सावओ य घडियदुगं।
आउं सुरेसु वंधइ, इत्तियमित्ताइं पलियाइं॥

८. बाणवई कोडीओ लक्खा गुणसट्ठि सहस्स पणवीसं।
णवसय पणवीसाए, सतिहा अडभागपलियस्स[1] जुयलं॥

९. तिव्वतमं तवमाणो, जं न वि निट्ठवइ जम्मकोडीहिं।
तं समभावियचित्तो, खवेइ कम्मं खणद्धेणं॥

१०. जे के वि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति जे गमिस्संति।
ते सव्वे सामाइयमाहप्पेणं भणेयव्वं॥

(१०)

सिद्ध एवं वीर–वन्दना

१. सिद्धाणं – बुद्धाणं, पारगयाणं परंपारगयाणं।
लोगग्गमुवगयाणं, नमो सया सव्व-सिद्धाणं॥

२. जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजली नमंसंति।
तं देव देव–महियं, सिरसा वन्दे महावीरं॥

३. इक्को वि णमोक्कारो, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स।
संसार – सागराओ, तारेई नरं व नारिं वा॥

---

१. विशुद्ध भाव से एक सामायिक करने वाला व्यक्ति एक पल्योपम के ८ भागों में से तीन भाग सहित ९२, ५९, २५, ९२५ पल्योपम के देवायुष्य का बन्ध करता है।

संस्कृत

(१)

मंगल-पाठ

१. अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मंगलम्॥

२. वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्त्तिकान्तिनिचयो, भो वीर! भद्रं दिश॥

३. ब्राह्मी चन्दनवालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता, सुभद्रा शिवा।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरि दिनमुखे कुर्वन्तु वो मंगलम्॥

४. मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमप्रभुः।
मंगलं स्थूलिभद्राद्याः जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

५. सर्वमंगल-मांगल्यं, सर्वकल्याणकारणम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

६. अर्हन्तो ज्ञान-भाजः सुरवर-महिताः, सिद्धि-सौधस्थ-सिद्धाः।
पंचाचार प्रवीणाः प्रगुण गणधराः पाठकाश्चागमानाम्॥

१५. तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्, यावन्निर्वाण-सम्प्राप्तिः ॥

१६. शास्त्राभ्यासो जिन-पतिनुतिः संगतिः सर्वदाऽऽर्यैः।
सत्साधूनां गुण-गण-कथा, दोष-वादे च मौनम् ॥

१७. शिवमस्तु सर्वजगतः परहित-निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

१८ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुख भाग् भवेत् ॥

१९. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥

२०. अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीड़नम् ॥

२१. विरम विरम संगान्मुंच मुंच प्रपंचम्।
विसृज विसृज मोहं, विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ॥
कलय कलय वृत्तं, पश्य पश्य स्वरूपम्।
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्द - हेतोः ॥

२२. अतुलसुखनिधानं ज्ञानविज्ञानबीजम्।
विलयगतकलंकं शान्तविश्वप्रचारम् ॥
गलितसकलशंकं विश्वरूपं विशालम्।
भज विगत-विकारं स्वात्मनात्मानमेव ॥

२२. प्रातरेव समुत्थाय, यः स्मरेज्जिनपञ्जरम् ।
तस्य किंचिद् भयं नास्ति, लभते सुखसम्पदः ।।

२३. जिनपंजर नामेदं यः स्मरेदनुवासरम् ।
कमल-प्रभसूरीन्द्रश्रियं स लभते नरः ।।

२४. प्रातः समुत्थाय पठेत् कृतज्ञो,
यः स्तोत्रमेतज्जिन–पंजरस्य ।
आसादयेत् सः कमलप्रभाख्यो,
लक्ष्मीं मनोवाञ्छितपूरणाय ।।

२५. श्री रुद्रपल्लीय-वरेण्य-गच्छे,
देव प्रभाचार्य-पदाब्ज-हंसः ।
वादीन्द्र-चूड़ामणिरेष जैनो,
जीयादसौ श्री कमल-प्रभाख्यः ।।

३. कौशल्या च ततः कुन्ती, प्रभावती सतीवरा,
सतीनामांक – यंत्रोऽयं चतुस्त्रिंशत् समुद्भवः।

४. यस्य पार्श्वे सदा यन्त्रो, वर्तते तस्य साम्प्रतम्,
भूरिनिद्रा न चायाति, नायान्ति भूतप्रेतकाः।

५. ध्वजायां नृपतेर्यस्य, यन्त्रोऽयं वर्तते सदा,
तस्य शत्रुभयं नास्ति संग्रामेऽस्य जयः सदा।

६. गृहद्वारे सदा यस्य यन्त्रोऽयं ध्रियते वरः,
कार्मणादिकतन्त्रैश्च, न स्यात् तस्य पराभवः।

७. स्तोत्रं सतीनां सुगुरुप्रसादात्, कृतं मयोद्योत-मृगाधिपेन,
यः स्तोत्रमेतत् पठति प्रभाते, स प्राप्नुते शं सततं मनुष्यः।

श्री सती–यंत्र

९	१६	२	७
६	३	१३	१२
१५	१०	८	१
४	५	११	१४

(४)

भवपाश-मोचक-स्तोत्र

(गजसिंह राठोड़)

१. तीर्थेश्वरस्य वीरस्य, कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
स्वरूपं बिम्बितं मेऽस्तु, मुक्तिदं हृदि सर्वदा ।।

२. नाथस्त्वमसि मे वीर ! सर्वस्वश्च प्रियोऽसि मे ।
शरणं सर्वभावेन, त्वां प्रपन्नोस्मि पाहि माम् ।।

३. भवाटव्यामटंतं माम्, भयत्रस्तमितस्ततः ।
भवभूरिभराक्रान्तं, त्रायस्व करुणानिधे !

४. उन्मज्जन्तं निमज्जन्तं, भवाम्भोधौ पुनः पुनः ।
निरालम्बावलम्बेश ! पाहि माम् त्राहि पाहि माम् ।।

५. भेदय भवपाशानि, छेदयाशेषसंशयान् ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, प्रभो ! तद्धाम देहि मे ।।

९. भवे भवे च मे लक्ष्यं, भवानेवास्तु सर्वशः।
काय समास्तु प्रत्येकं, तव प्राप्त्यैरहर्निशम्॥

१०. भवे भवे दिवारात्रं, निश्चलं सुसमाहितम्।
संपृक्तं वै मनो मेऽस्तु, तीर्थेश! त्वयि सर्वदा॥

११. तादात्म्यं शाश्वतं मेऽस्तु, वीरेणाद्वैतरूपकम्।
द्वैतभावं च वीरे मे, शीघ्रमेव विनश्यतु॥

१२. सोऽहं सोऽहं ध्रुवं सोऽहं, सोऽहमस्मि न संशयः।
दुःखमज्ञानजं सर्वं, चिदानन्दोऽहमन्यथा॥

(६)

श्री भक्तामर स्तोत्र

१. भक्तामर - प्रणत - मौलिमणि - प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित - पापतमो वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालंबनं भवजले, पततां जनानाम् ॥

२. यः संस्तुतः सकल-वाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोक - नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त - हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि, त प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥

३. बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यत — मतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थित - मिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥

४ वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ।

(६)

भक्तामर स्तोत्र

॥ दोहा ॥

आदि पुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।
धर्म धुरन्धर परम गुरु, नमो आदि अवतार ॥

॥ चौपाई ॥

१. सुर नत मुकुट रत्न छवि करैं,
अन्तर पाप तिमिर सब हरैं ।
जिन पद वन्दों मन वच काय,
भव जल पतित उधारन सहाय ॥

२. श्रुति पारग इन्द्रादिक देव,
जाकी स्तुति कीनी कर सेव ।
शब्द मनोहर अर्थ विशाल,
तिस प्रभु की बरनों गुणमाल ॥

३. विबुध वंद्य पद मैं मति हीन,
होय निलज्ज स्तुति मनसा कीन ।
जल प्रतिबिम्ब बुद्ध को गहै ?
शशि मण्डल बालक ही चहै ॥

४. गुण समुद्र ! तुम गुण अविकार,
कहत न सुरगुरु पावे पार ।

कल्पान्तकालपवनोद्धत – नक्र – चक्रं,
को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

५. सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥

६. अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारु – कलिकानिकरैकहेतुः ॥

७. त्वत्संस्तवेन भवसंतति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त - लोकमलिनील - मशेष - माशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव – शार्वरमंधकारम् ॥

प्रलय पवन उद्धत जलजन्तु,
जलधि तिरै को भुज वलवन्तु ।।

५. सो मैं शक्ति हीन स्तुति करूं,
भक्ति भाव वश कछु नहिं डरूं ।
ज्यों मृग निज सुत रक्षण हेत,
मृगपति सन्मुख जाय अचेत ।।

६. मैं शठ सुधी हंसन को धाम,
मुझ तव भक्ति बुलावे राम ।
ज्यों पिक अम्ब कली प्रभाव,
मधु ऋतु मधुर करे आराव ।।

७. तुम जस जंपत जिन छिन माहिं,
जन्म जन्म के पाप नसाहिं ।
ज्यों रवि उदय फटे तत्काल,
अलि-वत् नील निशा-तम जाल ।।

८. तुम प्रभावतै करहुं विचार,
होसी यह स्तुति जन मन हार ।
ज्यों जल कमल पत्र पै परै,
मुक्ताफल की द्युति विस्तरै ।।

९. तुम गुण महिमा हरत दुख दोष,
सो तो दूर रहो सुख पोष ।

कल्पान्तकालपवनोद्धत – नक्र – चक्रं,
को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

५. सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥

६. अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारु – कलिकानिकरैकहेतुः ॥

७. त्वत्संस्तवेन भवसंतति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त - लोकमलिनील - मशेष - माशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव – शार्वरमंधकारम् ॥

८. मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद–
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफल – द्युतिमुपैति ननूदबिंदुः ॥

९. आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त – दोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।

दूरे सहस्त्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ।।

१०. नात्यद्‌भुतं भुवनभूषण – भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः ।
तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।।

११. दृष्ट्वा भवंतमनिमेश ! विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति – दुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ।।

१२. यः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक – ललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ।।

१३. वक्त्रं क्व ते सुरनरारगनेत्रहारि,
निश्शेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम् ।
विम्बं कलंक - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम् ।।

१४. सम्पूर्णमंडल – शशांक – कलाकलाप–
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयंति ।

पाप विनाशक है तुम नाम,
कमल विनाशी ज्यों रविधाम ।।

१०. नहिं अचंभ जो होहिं तुरन्त,
तुमसे तुम गुण वरणत संत ।
जो अधीन को आप समान,
करै न, सो निंदित धनवान ।:

११. इक टक जन तुमको अवलोय,
और विषै रति करे न सोय ।
जो कीन्है खीर जलधि जलपान,
सो क्यों खार नीर पीवै मतिमान ।।

१२. प्रभु तुम वीतराग गुण लीन,
जिन परमाणु देह तुम कीन ।
हैं इतने ही ते परमाणु,
यातै तुम सम रूप न और ।।

१३. कहां तुम मुख अनुपम अविकार,
सुर नर नाग नयन मनहार ।
कहां चन्द्र मण्डल सकलंक,
दिन में ढाकपत्र—सम रंक ।।

१४. पूरन चन्द्र जोति छविवंत,
तुम गुण तीन जगत लंघंत ।

ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।

१५. चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि–
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ?

१६. निर्धूमवर्त्तिरपवर्जित — तैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ।।

१७. नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति ।
नाम्भोधरोदर – निरुद्ध – महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ।।

१८. नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकविम्बम् ।।

१९. किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु – दलितेषु तमस्सु नाथ !

बिंबं वियद्विलसदंशुलता - वितानं,
तुंगोदयाद्रि - शिरसीव सहस्त्ररश्मेः ॥

३०. कुंदावदात - चलचामर - चारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतम् ।
उद्यच्छशांक - शुचिनिर्झर - वारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥

३१. छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकर - प्रतापम् ।
मुक्ताफल - प्रकरजाल - विवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥

३२. गंभीर - तार - रवपूरित - दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसंगम - भूतिदक्षः ।
सद्धर्मराज - जयघोषण - घोषकः सन्,
खे दुंदुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥

३३. मंदार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
संतानकादिकुसुमोत्कर - वृष्टिरुद्धा ।
गंधोदबिंदु - शुभमंद - मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥

३४. शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रय - द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।

तुम तनु शोभित किरण विथार,
ज्यों उदयाचल रवि तमहार ॥

३०. कुन्द पुहुपसित चमर ढरन्त,
कनक वर्ण तुम तनु शोभंत ।
ज्यों सुमेरु तट निर्मल कान्ति,
झरना झरैं नीर उमगांति ॥

३१. ऊँचे रहें सुर-दुति लोप,
तीन छत्र तुम दीपैं अगोप ।
तीन लोक की प्रभुता कहैं,
मोती झालर सों छवि लहैं ॥

३२. दुन्दुभि शब्द गहर गंभीर,
चहुं दिश होय तुम्हारे धीर ।
त्रिभुवन जन शिव संगम करैं,
मानों जय जय रव उच्चरैं ॥

३३. मन्द पवन गन्धोदक इष्ट,
विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट ।
देव करैं विकसित दल सार,
मानों द्विज पंकति अवतार ॥

३४. तुम तन-भामंडल जिन चन्द,
सब दुति मन्त करत है मन्द ।

प्रोद्यद् – दिवाकर – निरंतर भूरिसंख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ।।

३५. स्वर्गापवर्गगममार्ग — विमार्गणेष्टः,
सद्धर्मतत्त्वकथनैक — पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व–
भाषास्वभाव – परिणामगुणैः प्रयोज्यः ।।

३६. उन्निद्रहेम – नवपंकज – पुंजकांती–
पर्युल्लसन्नख – मयूख - शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।।

३७. इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ।।

३८. श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल —
मत्त - भ्रमद् भ्रमरनाद - विवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धत — मापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।

३९. भिन्नेभ-कुम्भ - गजदुज्ज्वल - शोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकर - भूषित - भूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥

४०. कल्पांतकाल - पवनोद्धत - वह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥

४१. रक्तेक्षणं समदकोकिल - कंठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥

४२. वल्गत्तुरंग - गजगर्जित - भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूख - शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु-भिदामुपैति ॥

३९. अति मद मत्त गयंद, कुम्भथल नखन विदारै,
मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै।
बांकी दाढ विशाल– वदन में रसना लोलै,
भीम भयंकर रूप देखि, जन थर हर डोलै।
ऐसे मृगपति पग तले, जो नर आयो होय,
शरण गहैं तुम चरन की, बाधा करै न सोय।

४०. प्रलय पवन कर उठी, आग जो तास पटंतर,
वमैं फुलिंग शिखा उतंग, पर जलै निरन्तर।
जगत समस्त निगल्ल, भस्म करदेगी मानों,
तड़तड़ाट दव–अनल, जोर चहुं दिशा उठानों।
सो इक छिनमें उपशमैं, नाम–नीर तुम लेत,
होय सरोवर परिनमैं, विकसित कमल समेत।।

४१. कोकिल कंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता,
रक्तनयन फुङ्कार, मार विषकरण उगलंता।
फण को ऊँचा करै, वेग ही सन्मुख धाया,
तव जन होय निशंक, देख फणपति को आया।
जो चापै निज पांवतैं, व्यापै विष न लगार,
नाग दमन तुम नामकी, है जिनके आधार।।

४२. जिस रण माहिं भयानक, शब्द कर रहे तुरंगम,
घन सम गज गरजहिं, मत्त मानों गिरिजंगम।
अति कोलाहल मांहि, बात जहँ नाहिं सुनीजै,
राजन को प्रचण्ड देख, बल धीरज छीजै।
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिन माहि पलाय,
ज्यों दिनकर प्रकाशतैं, अन्धकार विनशाय।।

४३. कुन्ताग्रभिन्नगज - शोणित - वारिवाह-
वेगावतार - तरणातुरयोध - भीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पाद – पंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥

४४. अम्भोनिधौ क्षुभित – भीषण – नक्रचक्र-
पाठीन – पीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।
रंगत्तरङ्ग – शिखरस्थित – यानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥

४५. उद्भूतभीषणजलोदर – भारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत – जीविताशाः।
त्वत्पाद – पंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा-
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥

४६. आपाद – कंठ – मुरुशृंखलवेष्टितांगा-
गाढं वृहन्निगडकोटि – निघृष्टजंघाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवन्ति ॥

४७. मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
संग्राम - वारिधि - महोदर - बंधनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥

४८. स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मयारुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं,
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥

—:o:—

(७)

श्री कल्याण-मन्दिर स्तोत्र

[आचार्य श्री सिद्धसेन]

१. कल्याण मन्दिरमुदारमवद्य - भेदि,
भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रि - पद्मम् ।
संसार—सागर - निमज्जदशेष - जन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥

४७. महामत्त गजराज, और मृगराज दावानल,
फणपति रण प्रचंड, नीर निधि रोग महाबल।
बन्धन के ये भय आठ, डरकर मानों नाशैं,
तुम सुमरत छिनमांही, अभय थानक परकाशैं।
इस अपार संसार में, शरण नाहि प्रभु कोय,
यातैं तुम पद भक्त को, भक्ति सहाई होय॥

४८. यह गुण माल विशाल, नाथ! तुम गुणन संवारी,
विविध वर्णमय पुष्प, गूंथि मैं भक्ति विथारी।
जे नर पहरैं कंठ, भावना मन में भावैं,
मान तुंग ते निजाधीन, शिव लक्ष्मी पावैं।
भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत,
जे नर पढ़ैं सुभावसौं, ते पावैं शिव खेत॥

(७)

कल्याण–मन्दिर स्तोत्र

(दोहा)

परम ज्योति परमात्मा, परम ज्ञान-परवीन।
वन्दूं परमानन्दमय, घटघट अन्तर लीन॥

(चौपाई १५ मात्रा)

१. निर्भय-करन परम परधान।
भवसमुद्र-जल तारन यान॥
शिवमन्दिर अघ हरत अनिंद।
वन्दहूं पास-चरन अरविंद॥

२. यस्य स्वयं सुर – गुरुर्गरिमाम्बुराशेः
    स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर् न विभुर् विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय – धूमकेतोस्-
    तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ।।

३. सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
    मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो,
    रूपं प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मेः ?

४. मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
    नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्-
    मीयेत केन जलधेर् ननु रत्नराशिः ?

५. अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
    कर्तुं स्तवं लसदसंख्य – गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
    विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ?

६. ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
    वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ?
जाता तदेवमसमीक्षित – कारितेयं,
    जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ।।

२. कमठ-मान-भंजन वर वीर ।
गरिमा-सागर गुन-गंभीर ।।
सुर-गुरु पार लहै नहिं जास ।
मैं अजान जंपू जस तास ।।

३. प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह ।
क्यों हम सेती होय निवाह ।।
ज्यों दिन अन्ध-उल्लू को पोत ।
कहि न सकै रविकिरन-उद्योत ।।

४. मोह-हीन जाने मन मांहि ।
तौहु न तुम गुन वरने जांहि ।।
प्रलय पयोधि करैं जल बौन ।
प्रगटहिं रतन गिने तिहि कौन ।।

५. तुम असंख्य निर्मल गुणखान ।
मैं मतिहीन कहूं निज बान ।।
ज्यों बालक निज बाँह पसार ।
सागर परिमित कहै विचार ।।

६. जे जोगीन्दर करहिं तप खेद ।
तऊ न जानहिं तुम गुन-भेद ।।
भक्ति-भाव मुझ मन अभिलाख ।
ज्यों पंछी बोलैं निज भाख ।।

२. यस्य स्वयं सुर – गुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर् न विभुर् विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय – धूमकेतोस्-
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ।।

३. सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप–
मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ?

४. मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्–
मीयेत केन जलधेर् ननु रत्नराशिः ?

५. अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य – गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ?

६. ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ?
जाता तदेवमसमीक्षित – कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ।।

२. कमठ-मान-भंजन वर वीर ।
गरिमा-सागर गुन-गंभीर ।।
सुर-गुरु पार लहै नहिं जास ।
मैं अजान जंपू जस तास ।।

३. प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह ।
क्यों हम सेती होय निवाह ।।
ज्यों दिन अन्ध उल्लू को पोत ।
कहि न सकै रविकिरन-उद्योत ।।

४. मोह-हीन जाने मन मांहि ।
तौहु न तुम गुन वरने जाहिं ।।
प्रलय पयोधि करैं जल वौन ।
प्रगटहि रतन गिने तिहिं कौन ।।

५. तुम असंख्य निर्मल गुणखान ।
मैं मतिहीन कहूं निज वान ।।
ज्यों वालक निज वांह पसार ।
सागर परिमित कहै विचार ।।

६. जे जोगीन्दर करहिं तप खेद ।
तऊ न जानहिं तुम गुन-भेद ।।
भक्ति-भाव मुझ मन अभिलाष ।
ज्यों पंछी बोलै निज भाग ।।

२. यस्य स्वयं सुर-गुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर् न विभुर् विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय-धूमकेतोस्-
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥

३. सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ?

४. मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्-
मीयेत केन जलधेर् ननु रत्नराशिः ?

५. अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य-गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ?

६. ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ?
जाता तदेवमसमीक्षित-कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥

२. कमठ-मान-भंजन वर वीर ।
गरिमा-सागर गुन-गंभीर ॥
सुर-गुरु पार लहै नहिं जास ।
मैं अजान जंपू जस तास ॥

३. प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह ।
क्यों हम सेती होय निवाह ॥
ज्यों दिन अन्ध-उल्लू को पोत ।
कहि न सकै रविकिरन-उद्योत ॥

४. मोह-हीन जाने मन मांहि ।
तोहु न तुम गुन वरने जाहिं ॥
प्रलय पयोधि करैं जल वौन ।
प्रगटहिं रतन गिने तिहि कौन ॥

५. तुम असंख्य निर्मल गुणखान ।
मैं मतिहीन कहूं निज वान ॥
ज्यों वालक निज वांह पसार ।
सागर परिमित कहै विचार ॥

६. जे जोगीन्दर करहिं तप खेद ।
तऊ न जानहिं तुम गुन-भेद ॥
भक्ति-भाव मुझ मन अभिलाष ।
ज्यों पंछी बोलै निज भाष ॥

२. यस्य स्वयं सुर – गुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर् न विभुर् विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय – धूमकेतोस्–
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥

३. सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप–
मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मेः ?

४. मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्–
मोयेत केन जलधेर् ननु रत्नराशिः ?

५. अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य – गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ?

६. ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ?
जाता तदेवमसमीक्षित – कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥

२. कमठ-मान-भंजन वर वीर।
गरिमा-सागर गुन-गंभीर ॥
सुर-गुरु पार लहै नहिं जास।
मैं अजान जंपू जस तास ॥

३. प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह।
क्यों हम सेती होय निवाह ॥
ज्यों दिन अन्ध उल्लू को पोत।
कहि न सकै रविकिरन-उद्योत ॥

४. मोह-हीन जाने मन मांहि।
तोहु न तुम गुन वरने जाहि ॥
प्रलय पयोधि करै जल वौन।
प्रगटहि रतन गिने तिहि कौन ॥

५. तुम असंख्य निर्मल गुणखान।
मैं मतिहीन कहूं निज वान ॥
ज्यों बालक निज बांह पसार।
सागर परिमित कहै विचार ॥

६. जे जोगीन्दर करहिं तप खेद।
तऊ न जानहिं तुम गुन-भेद ॥
भक्ति-भाव मुझ मन अभिलाष।
ज्यों पंछी बोलै निज भाष ॥

२. यस्य स्वयं सुर – गुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर् न विभुर् विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय – धूमकेतोस्–
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ।।

३. सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप–
मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ?

४. मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्–
मीयेत केन जलधेर् ननु रत्नराशिः ?

५. अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य – गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ?

६. ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ?
जाता तदेवमसमीक्षित – कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ।।

२. कमठ-मान-भंजन वर वीर।
गरिमा-सागर गुन-गंभीर॥
सुर-गुरु पार लहै नहिं जास।
मैं अजान जंपू जस तास॥

३. प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह।
क्यों हम सेती होय निवाह॥
ज्यों दिन अन्ध उलू को पोत।
कहि न सकै रविकिरन-उदोत॥

४. मोह-हीन जानै मन मांहि।
तोहु न तुम गुन वरने जाहिं॥
प्रलय पयोधि करै जल बौन।
प्रगटहिं रतन गिने तिहिं कौन॥

५. तुम असंख्य निर्मल गुणखान।
मैं मतिहीन कहूं निज वान॥
ज्यों बालक निज बांह पसार।
सागर परिमित कहै विचार॥

६. जे जोगीन्दर करहिं तप खेद।
तऊ न जानहिं तुम गुन-भेद॥
भक्ति-भाव मुझ मन अभिलाष।
ज्यों पंछी बोलै निज भाष॥

७. आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहत – पान्थजनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ।।

८. हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तो क्षणेन निविड़ा अपि कर्म–बन्धाः ।
सद्यो भुजंगममया इव मध्यभाग—
मभ्यागते वनशिखंडिनि चन्दनस्य ।।

९. मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रैरुपद्रवशतैस् त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गो–स्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानः ।।

१०. त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून—
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ।।

११. यस्मिन् हर-प्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ?

७. तुम जस महिमा अगम अपार ।
नाम एक त्रिभुवन-आधार ।।
आवै पवन पद्मसर होय ।
ग्रीषम-तपन निवारै सोय ।।

८. तुम आवत भविजन-घटमाँहि ।
कर्म-निबंध शिथिल ह्वै जाहि ।।
ज्यों चन्दनतरु बोलहि मोर ।
डरहि भुजंग लगे चहुं ओर ।।

९. तुम निरखत जन दीनदयाल ।
संकट तैं छूटैं तत्काल ।।
ज्यों पशु घेर लेहि निशि चोर ।
ते तज भागहि देखत भोर ।।

१०. तुम भविजन-तारक किमि होहि ।
ते चितधार तिरहि ले तोहि ।।
यह ऐसे कर जान स्वभाव ।
तिरहि मसक ज्यों गर्भित बाव ।।

११. जिहँ सब देव किये वश वाम ।
तैं छिन में जीत्यों सो काम ।
ज्यों जल करे अगनिकुल-हान ।
वड्वानल पीवै सो पान ।।

१२. स्वामिन्ननल्प – गरिमाणमपि प्रपन्नास्,
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ?
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥

१३. क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः ?
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ?

१४. त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज – कोशदेशे ।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य संभवि पदं ननु कर्णिकायाः ॥

१५. ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ॥

१६. अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ?
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥

१२. तुम अनन्त गिरवा गुण लिये।
क्यों कर भक्ति धरौं निज हिये ॥
ह्वै लगि रूप तिरहि संसार।
यह प्रभु-महिमा अगम अपार ॥

१३. क्रोध-निवार कियो मन शांत।
कर्म-सुभट जीते किहि भांत।
यह पटंतर देखहु संसार।
नील विरछ ज्यौं दहै तुसार।

१४. मुनिजन हिये कमल निज टोहि।
सिद्ध रूप-सम ध्यावहिं तोहि।
कमलकरणिका विन नहिं और।
कमलवीज उपजन की ठौर।

१५. जब तुम ध्यान धरै मुनि कोय।
तब विदेह परमातम होय।
जसे धातु शिलातनु त्याग।
कनकस्वरूप भयो तपि आग।

१६. जाके मन तुम करहु निवास।
विनसि जाय क्यों विग्रह तास
ज्यों महन्त विच आवे कोय।
विग्रह-मूल निवारै सोय

१७. आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या,
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं,
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ?

१८. त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो,
नो गृह्यते विविध – वर्णविपर्ययेण ?

१९. धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा—
दास्तां जनो, भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ?

२० चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव,
विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ?
त्वद्-गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥

२१. स्थाने गभीरहृदयोदधि – सम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परमसम्मदसंगभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम् ॥

१७. करहिं विबुध जे आतमध्यान।
तुम प्रभाव तैं होय निदान॥
जैसे नीर सुधा अनुमान।
पीवत विष विकार की हान॥

१८. तुम भगवन्त विमल गुणलीन।
समल रूप मानहिं मतिहीन॥
ज्यों पीलिया रोग दृग गहै।
वर्ण विवर्ण शंख सो कहै॥

(दोहा)

१९ निकट रहत उपदेश सुनि, तरुवर भयो अशोक।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक॥

२० सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेठ बींट मुख सोंहि।
त्यों तुम सेवत सुवन जन, बन्ध अधोमुख होंहि॥

२१. उपजी तुम हिय-उदधितें, वानी सुधा - समान।
जिह पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपद थान॥

२२. स्वामिन् ! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि - पुंगवाय,
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्ध - भावाः।।

२३. श्यामं गभीर - गिरमुज्ज्वलहेमरत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैश्-
चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम्।।

२४. उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर् बभूव !
सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ?

२५. भो भो ! प्रमादमवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते।।

२६. उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ताकलाप - कलितोल्लसितातपत्र-
व्याजात् त्रिधा धृततनुध्रुवमभ्युपेतः।।

२२. कहहिं सार तिहु लोक को, ये सुर - चामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमैं, तिहँ गति ऊरध होय ।।

२३. सिंहासन गिरि मेरु-सम, प्रभु-धुनि गर्जन घोर ।
श्यामसुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन मोर ।।

२४. छविहत होत अशोक दल, तुम,- भामण्डल देख ।
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विसेख ।।

२५. सीख कहै तिहुँ लोक को, यह सुर-दुन्दुभि-नाद ।
शिव-पथ सारथवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ।।

२६. तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्ता-गण छवि देत ।
त्रिविध रूप धर मनु शशि, सेवत नखत समेत ।

२७. स्वेन प्रपूरित – जगत्त्रय – पिण्डितेन,
कान्ति – प्रताप – यशसामिव संचयेन।
माणिक्य – हेम – रजतप्रविनिर्मितेन,
साल–त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥

२८. दिव्यस्रजो जिन ! नमत्–त्रिदशाधिपाना–
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव ॥

२९. त्वं नाथ ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि,
यत् तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव – निपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो यदसि कर्म-विपाकशून्यः ॥

३०. विश्वेश्वरोऽपि जनपालक ! दुर्गतस्त्वं,
किं वाऽक्षर - प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतु ॥

३१. प्राग्भार-संभृत-नभांसि रजांसि रोषा–
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायाऽपि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥

(पद्धरि छन्द)

२७. प्रभु ! तुम शरीर-दुति रतन-जेम ।
परताप-पुंज जिम शुद्ध हेम ॥
अति धवल सुजस रूपा-समान ।
तिनके गढ़ तीन विराजमान ॥

२८. सेवहिं सुरेन्द्र कर नमत भाल ।
तिन सीस-मुकुट तज देहिं माल ॥
तुम चरण लगत लहलहै प्रीति ।
नहिं रमहिं और जन सुमन-रीति ॥

२९. प्रभु भोग-विमुख तन कर्मदाह ।
जन पार करत भव-जल निवाह ॥
ज्यों माटी-कलश सुपक्क होय ।
ले भार अधोमुख तिरहि तोय ॥

३०. तुम महाराज ! निर्धन निराश ।
तज विभव-विभव सब जग-विकाश ॥
अक्षर स्वभाव सुलिखे न कोय ।
महिमा भगवन्त अनन्त सोय ॥

३१. कर कोप कमठ निज वैर देख ।
तिन करी धूलि वरषा विसेख ॥
प्रभु ! तुम छाया नहिं भई हीन ।
सो भयो आप लंपट मलीन ॥

३२. यद्गर्जदूर्जित - घनौघमदभ्र - भीमं,
भ्रश्यत् - तडिन्मुसलमांसल - घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ।।

३३. ध्वस्तोर्ध्वकेश - विकृताकृति - मर्त्यमुण्ड–
प्रालम्बभृद् - भयद् - वक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याऽभवत् प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ।।

३४. धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्यकृत्याः ।
भक्त्योल्लसत् - पुलक - पक्ष्मल - देहदेशाः,
पाद-द्वयं तव विभो ! भुवि जन्मभाजः ।।

३५. अस्मिन्नपार - भववारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवण - गोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ?

३६. जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव !
मन्ये मया महितमीहितदान - दक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ।।

३२. गरजंत घोर घन अन्धकार।
चमकंत विज्जु जल मूसलधार॥
बरसंत कमठ धर ध्यान रुद्र।
दुस्तर करंत निज भव-समुद्र॥

(वास्तु छन्द)

३३. मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि,
भेजे तुरन्त पिशाचगण नाथ पास उपसर्ग-कारण;
अग्नि-झाल झलकत मुख, धुनि करत जिमि मत्तवारण
कालरूप विकराल तन, मुण्डमाल तिहँ कंठ।
ह्वै निशंक वह रंक निज, करै कर्म दृढ गंठ॥

(चौपाई १५ मात्रा)

३४. जे तुम चरणकमल तिहुँ काल।
सेवहिं तज माया जंजाल॥
भाव भगति मन हरष अपार।
धन्य धन्य तिन जग अवतार॥

३५. भवसागर में फिरत अजान।
मैं तुझ सुजस सुन्यो नहिं कान॥
जो प्रभु नाम-मन्त्र मन धरै।
तासों विपत-भुजंगम डरै॥

३६. मनवांछित फल जिन-पद मांहि।
मैं पूरब भव सेये नाहि॥
माया-मगन फिर्यो अज्ञान।
करहिं रंक जन मुझ अपमान॥

३७. नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्ध - गतयः कथमन्यथैते ।।

३८. आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ।।

३९. त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय,
दुःखांकुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ।।

४०. निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादितरिपु - प्रथितावदातम् ।
त्वत्पाद - पंकजमपि प्रणिधानवन्ध्यो,
वध्योऽस्मि चेद् भुवनपावन ! हा हतोऽस्मि ।।

४१. देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तुसार !
संसार-तारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ !
त्रायस्व देव ! करुणाह्रद ! मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बुराशेः ।।

३७. मोह-तिमिर छायो दृग मोहि।
जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि॥
तो दुर्जन मुझ संगति गहैं।
मर्म छेद के कुवचन कहैं॥

३८. सुन्यो कान जस पूजे पाय।
नैनन देख्यो रूप अघाय।
भक्तिहेतु न भयो चित चाव।
दुख-दायक किरिया विन भाव॥

३९. महाराज! शरणागत पाल।
पतित उधारन दीन-दयाल॥
सुमरन करहुं नमाय निज शीश।
मुझ दुख दूर करहु जगदीश!

४०. कर्म-निकन्दन महिमा सार।
अशरण शरण सुजस विस्तार॥
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय।
तो मुझ जन्म अकारथ जाय॥

४१. सुर-गण-वन्दित दयानिधान।
जग-तारण जगपति जग-जान॥
दुख-सागर तैं मोहि निकासि।
निर्भय थान देहु सुखरासि॥

४२. यद्यस्ति नाथ ! भवदंघ्रिसरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-संचितायाः ।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य ! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥

४३. इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लतपुलककंचुकितांगभागाः ।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्या,
ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥

४४. जननयनकुमुदचन्द्र !
प्रभास्वरा स्वर्ग - सम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया,
अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥

—:o:—

नमस्कार महा-मन्त्र कहता है—

"तुम सब तुम्हारे 'अर्हं' को मुझ पर भेंट चढ़ा दो—मैं तुम्हें 'अर्हं' बना दूंगा ।

४२. मैं तुम-चरणकमल गुन गाय।
बहुविधि भक्ति करी मन लाय ॥
जन्म जन्म प्रभु पाऊँ तोहि।
यह सेवा-फल दीजै मोहि ॥

(दोधकांत वेसरी छन्द)

४३. इहि विधि श्री भगवन्त,
सुजस जे भविजन भाषहिं।
ते जन पुण्य – भण्डार,
संचि चिर पाप प्रणासहिं ॥

४४. रोम रोम हुलसत अंग,
प्रभु – गुण मन ध्यावहिं।
स्वर्ग – सम्पदा भोगि वेग,
पंचम – गति पावहिं ॥

यह कल्याणमन्दिर कियो,
कुमुदचन्द्र की बुद्धि।
भाषा कहत 'बनारसी',
कारण समकित शुद्धि ॥

(८)

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र

(शार्दूल विक्रीड़ित छन्द)

१. किं कर्पूरमयं सुधारसमयं, किं चन्द्ररोचिर्मयं,
किं लावण्यमयं महामणिमयं कारुण्यकेलीमयम् ।
विश्वानन्दमयं महोदयमयं शोभामयं चिन्मयं,
शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपतेर्भूयाद्भवालम्बनम् ॥

२. पातालं कलयन् धरां धवलयन्नाकाशमापूरयन्,
दिक्चक्रं क्रमयन् सुरासुरनरश्रेणिं च विस्मापयन् ।
ब्रह्माण्डं सुखयन् जलानि जलधेः फेनच्छलाल्लोलयन्,
श्रीचिन्तामणि-पार्श्वसंभवयशो हंसश्चिरं राजते ॥

३. पुण्यानां विपणिस्तमोदिनमणिः कामेभ कुम्भे सृणिः,
मोक्षे निस्सरणिः सुरद्र करिणि ज्योतिः प्रकाशारणिः ।
दाने देवमणिर्नतोत्तमजनश्रेणिः कृपा सारिणिः,
विश्वानन्दसुधाघृणिर्भवभिदे श्रीपार्श्वचिन्तामणिः ॥

. श्री चिंतामणि पार्श्वविश्वजनतासंजीवनस्त्वं मया,
दृष्टस्तात ! ततः श्रियः समभवन्नाशक्रमाचक्रिणम् ।
मुक्तिः क्रीडति हस्तयोर्बहुविधं सिद्धं मनोवांछितं,
दुर्दैवं दुरितं च दुर्दिनभयं कष्टं प्रणष्टं मम ॥

(८)

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र

१. जिन का शरीर अहा ! कर्पूर जैसा श्वेत, अमृत जैसा मिष्ट, चन्द्र की कान्ति जैसा शीतल और प्रकाशित, सुन्दर मोटी मणि जैसा तेजस्वी, करुणा की भूमिका रूप, समग्र विश्व को आनन्दमय, महा उदय वाला, शोभावाला, सचित स्वरूप, शुक्ल ध्यान में निमग्न है ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान् संसार के आधार रूप हों।

२. पाताल में प्रवेश किये हुए भी, पृथ्वी को उज्वल करता हुआ, आकाश में सर्वत्र व्याप्त, दिशाओं के चक्र को उल्लंघित करता हुआ, देव दानवों को विस्मित करता हुआ, तीनों जगत को सुख देता हुआ, समुद्र में श्वेत फेन के वहाने शोभायमान होकर जल को कम्पित करता हुआ श्री पार्श्वनाथ चिन्तामणि का यश रूपी हंस चिरकाल तक शोभित रहे।

३. पुण्य का हाट (भण्डार) रूप, पाप रूपी अंधकार में सूर्यरूप, विषयरूपी हाथी को वश करने में अंकुशरूप, मोक्ष में गमन करने के लिए निस्सरणि रूप, आत्मज्ञान रूपी ज्योति को प्रकाशित करने में अरणि के वृक्ष के समान, दान देने में इन्द्र के समान, श्री पार्श्वनाथजी के आगे नमन करने वाले सज्जन पुरुषों के लिए कृपा की नदी के समान, विश्व में आनन्दरूपी अमृत की तरंग के समान श्रीपार्श्व चिंतामणि भगवान् संसार समुद्र का नाश करने वाले हैं।

४. हे तात ! समस्त विश्व के जीवरूप, सच्चिदानंद श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ ! जब से मुझे आपके दर्शन हुए हैं, तब से ही इन्द्र देव तथा चक्रवर्ती पर्यन्त की समृद्धि मुझे प्राप्त हो गई है, मेरे हाथों में मुक्ति रूपी देवी क्रीड़ा करती है, मेरी विविध प्रकार की मन की अभिलाषाएं सिद्ध हो गई, और मेरे दुर्दैव, मेरे पाप, मेरे दुःख तथा मेरी दरिद्रता का समूल नाश हो गया है।

५. यस्य प्रौढतम-प्रतापतपनः प्रोद्दामधामा जगज्–
जंघालः कलिकाल – केलिदलनो मोहान्धविध्वंसकः ।
नित्योद्योतपदं समस्तकमलाकेलिगृहं राजते,
स श्रीपार्श्वजिनो जने हितकरश्चिन्तामणिः पातु माम्

६. विश्वव्यापितमो हिनस्ति तरणिर्बालोऽपि कल्पांकुरो,
दारिद्र्याणि गजावलीं हरिशिशुः काष्ठानि वह्नेः कणः
पीयूषस्य लवोऽपि रोगनिवहं यद्वत्तथा ते विभो !
मूर्तिः स्फूर्तिमती सती त्रिजगती-कष्टानि हर्तुं क्षमा ।।

७. श्रीचिन्तामणिमन्त्रमोंकृतियुतं ह्रींकारसाराश्रितं,
श्रीमर्हन् नमिऊणपासकलितं त्रैलोक्यवश्यावहम् ।
द्वेधाभूतविषापहं विषहरं श्रेयःप्रभावाश्रयं,
सोल्लासं वसहाङ्कितं जिन फुलिङ्गानन्ददं देहिनाम् ।।

८. ह्रीं श्रींकारवरं नमोऽक्षरपरं ध्यायन्ति ये योगिनो,
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्वमधिपं चिन्तामणिसंज्ञकम् ।
भाले वामभुजे च नाभिकरयोर्भूयो भुजे दक्षिणे,
पश्चादष्टदलेषु ते शिवपदं द्वित्रैर्भवैर्यान्त्यहो ।।

५. अतिशय प्रतापवान् सूर्यरूप, अति उत्कृष्ट जगत्रूपी धाम को तथा कलिकाल की महिमा को दहन करने वाला, मोहरूपी अन्धकार को नाश करने वाला, समस्त प्रकार की समृद्धि धारण करने वाला, और जिसका पद हमेशा शोभित रहता है, ऐसे भगवान् जगत के जीवों का हित करने वाले श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मेरी रक्षा करो।

६. जिस तरह सूर्य बाल्यावस्था में रहता हुआ भी विश्व में व्याप्त अन्धकार का नाश करता है, कल्पवृक्ष का एक ही अंकुर दरिद्रता का नाश करने में समर्थ है, सिंह का एक छोटा शावक ही हाथियों के समूह का नाश कर देता है, अग्नि का एक सूक्ष्म कण लकड़ियों के समूह को भस्म कर डालता है, अमृत की एक ही बून्द रोग को समूल नष्ट कर देती है; उसी तरह हे विभो! मनुष्य की मति में स्फुरणा करने वाली आपकी मूर्ति तीनों लोकों के दुःख दूर करने में समर्थ है।

७. ॐ शब्द की आकृतिवाला ह्रीं कार से युक्त श्री अर्हन्नमिऊण के मन्त्र से बद्ध हुआ तीनों लोकों को अपनी आज्ञा में चलाने वाला, विषयरूपी जहर का नाश करनेवाला, कल्याणकारक प्रभाववाला, व, स, ह, इत्यादि अक्षरों से युक्त, ऐसा मनुष्य मात्र को आनन्द रूप श्री चिन्तामणि नाम का मन्त्र है।

८. जो योगी हृदय कमल में धारण करके कपाल में, वाम भुजा में, दाहिनी भुजा में, इसके बाद आठ दलों में ध्यान धरते हैं, वे दो-तीन भवों के बाद मोक्ष धाम को प्राप्त हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

(स्रग्धरा छन्द)

९. नो रोगा नैव शोका, न कलहकलना, नारि-मारिप्रचारा,
नैवाधिर्नासमाधिर्न च दरदुरिते दुष्टदारिद्रता नो।
नो शाकिन्यो ग्रहा नो, न हरि-करि-गणा व्याल-वैतालजालाः,
जायन्ते पार्श्वचिंतामणिनतिवशतः प्राणिनां भक्तिभाजाम् ।।

(शार्दूल विक्रीड़ित छन्द)

१०. गीर्वाणद्रुम - धेनु - कुम्भमणयस्तस्याङ्गणेरिङ्गिणो-,
देवा दानवमानवाः सविनयं तस्मै हितध्यायिनः ।
लक्ष्मीस्तस्य वशाऽवशेव गुणिनां ब्रह्माण्डसंस्थायिनी,
श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथमनिशं संस्तौति यो ध्यायति ।।

११. इति जिनपतिपार्श्वः पार्श्व पार्श्वाख्ययक्षः,
प्रदलितदुरितौघः प्रीणितप्राणिसार्थः ।
त्रिभुवन - जन -वांच्छादान - चिन्तामणीकः,
शिवपद - तरुबीजं बोधिबीजं ददातु ।।

(६)

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

१. यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।

९. जो भक्तिमान् प्राणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ में अपना ध्यान लगाते हैं, उनको रोग, शोक, क्लेश, अशान्ति, भय, पाप, दारिद्र, शत्रु द्वारा उत्पन्न व्याधि तथा शाकिनी, भूत, पिशाच आदि हाथी तथा सिंह आदि दुःखरूप हो ही नहीं सकते।

१०. जो प्राणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की हमेशा स्तुति करता है तथा ध्यान धरता है, उसके घर आंगन में रागादि आनन्द हुआ करते हैं, उसको कल्पवृक्ष, कामधेनु, पारसमणि इत्यादि अलौकिक पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं, देव-दानव और मनुष्य शुद्ध विनय से उसके हित का ही चितवन किया करते हैं, गुणवान पुरुषों को इस ब्रह्माण्ड में प्राप्त हुई समस्त लक्ष्मी उसके वश में हुआ करती है।

११. इस तरह जिनपति पार्श्वनाथ जिन के पास रहने वाला पार्श्व नाम का यक्ष है, जिसके पाप कर्म नष्ट हो गये हैं, जिस भगवान् ने जन-समुदाय को सन्तुष्ट किया है और जो तीनों लोकों की इच्छा पूर्ण करने में चिन्तामणि के समान है, वे भगवान् मोक्ष पद रूपी वृक्ष की बीजरूप समकित मुझे प्रदान करें।

(९)

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

१. जिन्हों की प्रज्ञा में मुकुर–सम चैतन्य जड़ भी,
सदा ध्रौव्योत्पादस्थितियुत सभी साथ झलकें।

जगत् साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

२. अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्दरहितं,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाऽभ्यन्तरमपि ।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

३. नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट – मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

४. यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः ।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा ?
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

५. कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर् ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माऽप्येको नृपतिवर–सिद्धार्थ–तनयः ।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगत-भवरागोऽद्भुतगतिर्,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

६. यदीया वाग्गंगा विविध नय-कल्लोल–विमला,
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।

जगत्साक्षी मार्ग–प्रकटन–विधाता तरणि ज्यों,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ।।

२. जिन्हों की नेत्राभा अचल, अरुणाई-रहित हो,
सुझाती भक्तों को हृदयगत क्रोधादि-शमता ।
विशुद्धा सौम्या आकृति अमित ही भव्य लगती,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ।।

३. नमस्कर्ता इन्द्र-प्रभृति अमरों के मुकुट की,
प्रभा श्रीपादाम्भोरुह-युगल-मध्ये झलकती ।
भव-ज्वालाओं का शमन करते वे स्मरण से,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ।।

४. जिन्हों की अर्चा से मुदित-मन हो दर्दुर कभी,
हुआ था स्वर्गी तत्क्षण सुगुण-धारी अति सुखी ।
शिवश्री के भागी यदि सुजन हों तो अति कहां,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ।।

५. तपे सोने-जैसे तनु-रहित भी ज्ञान-गृह हैं,
अकेले नाना भी जनि-रहित सिद्धार्थ-सुत हैं ।
महाश्री के धारी विगत-भव-रागी अति-गति,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ।।

६. जिन्हों की वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
न्हिलाती भक्तों को विमल अति सद्ज्ञान जल से ।

इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

७. अनिर्वारोद्रेकस् त्रिभुवनजयी कामसुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशमपदराज्याय स जिनः,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

८. महामोहातंक – प्रशमनपराऽऽकस्मिक – भिषग्,
निरापेक्षो बन्धुर्विदितमहिमा मङ्गल-करः।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तमगुणो,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम् ॥

(१०)

श्री परमात्म द्वात्रिंशिका

(आचार्य अमितगति)

१. सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव !

अभी भी सेते हैं वृद्ध जन महाहंस जिसको,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ॥

७. त्रिलोकी का जेता मदन भट जो दुर्जय महा,
युवावस्था में भी विदलित किया ध्यान-वल से।
महा-नित्यानन्द-प्रशम पद पाया जिन-पति,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ॥

८. महा-मोहातंक-प्रशम करने में विषग हैं,
विना इच्छा वन्धु, प्रथित जगकल्याण-कर हैं।
सहारा भक्तों के भवभय-भृतों के, वर गुणी,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों ॥

महावीराष्टक स्तोत्र यह, भक्तिवश भागेन्दु ने रचा।
इसे जो पढ़ेगा या कि सुनेगा, यह परमगति को प्राप्त होगा ॥

(१०)

श्री परमात्म द्वात्रिंशिका

१. हे देव ! मैं समस्त जगत के जीव मात्र से मैत्री, गुणीजनों के साथ हृदय में प्रेम और जो इस संसार में रोग, शोक, भूख, पिपासादि बाधाओं से पीड़ित हैं उनके लिए अंतरंग में दया भाव, जो विपरीत स्वभाव वाले दुर्जन, क्रूर, कुमार्गी, मिथ्यात्वी पुरुष हैं, उनके साथ माध्यस्थभाव चाहता हूं।

२. शरीरतः कर्त्तुमनन्त शक्ति,
विभिन्नमात्मानमपास्त दोषम् ।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्ग यष्टिं,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ।।

३. दुःखे सुखे वैरिणि वंधु वर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेष ममत्व बुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ !

४. मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव,
स्थिरौ निखाताविव विम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमो धुनानौ हृदि दीपकाविव ।।

५. एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः,
प्रमादतः संचरता यतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीड़िता,
ममास्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ।।

६. विमुक्तिमार्ग प्रतिकूलवर्त्तिना,
मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया ।
चारित्र शुद्धेर्यदकारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं विभो !

२. हे जिनेन्द्र ! आपकी परम कृपा से मुझ में ऐसी शक्ति पैदा हो कि जिस प्रकार म्यान से तलवार अलग हो जाती है उसी प्रकार मेरी इस अनन्त शक्तिशाली, निर्दोष, शुद्ध, वीतराग आत्मा को मैं इस नश्वर शरीर से अलग कर दूं।

३. प्रभो ! समस्त ममत्व बुद्धि को त्याग कर मेरा मन दुःख में, सुख में, वैरियों अथवा बन्धु समूह में; इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग में; गृह में, वन में हमेशा समभाव को धारण करे।

४. हे मुनिराज ! अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले दीपक के समान, आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय में सर्वदा ही इस प्रकार स्थित रहें कि मानों मेरे हृदय में लीन हो गये हों, कील गये हों, स्थिर हो गये हों, बैठ गये हों तथा चित्र के समान विम्बित हो गये हों।

५. देव ! यदि मुझ से प्रमाद पूर्वक इधर-उधर चलते हुए एकेन्द्रियादि प्राणी नाश किये गये हों, खंडित किये गये हों, मसल दिये गये हों, पीड़ित किये गये हों तो मेरा यह सारा दुष्कर्म मिथ्या होवे।

६. प्रभो ! मैं मोक्ष मार्ग से विपरीत चलने वाला हूं, दुर्बुद्धि हूं, चार कषाय, पांच इन्द्रियों के वश होकर मेरे द्वारा जो कुछ चारित्र की निर्मलता का विनाश किया गया हो, वह मेरा दुष्कृत नाश होवे।

७. विनिन्दनालोचन गर्हणैरहं,
मनोवचः काय कषाय निर्मितम् ।
निहन्मि पापं भवदुःख कारणं,
भिषग्विषं मंत्र गुणैरिवाखिलम् ।।

८. अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रमं,
जिनातिचारं स्वचरित्र कर्म्मणः ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ।।

६. क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं,
व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्त्तनं,
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ।।

१०. यदर्थ मात्रा पदवाक्यहीनं,
मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी,
सरस्वती केवल बोध लब्धिम् ।।

११. बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः,
स्वात्मोपलब्धिः शिव सौख्य सिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तुदाने,
त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि !

७. संसार के दुःखों का कारण भूत जो कुछ भी पाप मैंने मन, वचन, काय और कषायों के द्वारा किया हो, उसको मैं अपनी निन्दा, आलोचना और गर्हा करके इस प्रकार नष्ट करता हूं कि जिस प्रकार वैद्य समस्त विष को मंत्र के गुणों से दूर कर देता है।

८. हे जिनदेव ! मैंने दुर्बुद्धि से प्रमादवश अपने उत्तम चरित्र में जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचारादिक दोष लगाये हैं, उनकी शुद्धता के लिए मैं पश्चात्ताप करता हूं।

९. प्रभो ! मन की निर्मलता में क्षति होना अतिक्रम है, शील वृत्ति का उल्लंघन करना व्यतिक्रम है, विषयों में प्रवर्त्तन करना अतिचार है और विषयों में अत्यन्त आसक्त होना अनाचार है। इस प्रकार आचार्य कहते हैं।

१०. मेरे द्वारा प्रमादवश यदि अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से न्यूनाधिक जो कुछ भी वचन कहा गया हो तो सरस्वती देवी क्षमा करके मुझे केवल ज्ञान की प्राप्ति कराए।

११. हे देवी ! तुम इच्छित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि के समान हो अतः मैं तुझे नमस्कार करता हूं। तेरे ही प्रसाद से मुझे ज्ञान, समाधि, परिणामों की निर्मलता और आत्म-स्वरूप की प्राप्ति तथा शिव सुख की सिद्धि होवे।

१२. यः स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दैर्,
यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः
यो गीयते वेद पुराण शास्त्रैः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्

१३. यो दर्शन - ज्ञान - सुख - स्वभावः,
समस्त संसार – विकार वाह्यः
समाधिगम्यः परमात्म – संज्ञः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्

१४. निषूदते यो भवदुःखजालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगि–निरीक्षणीयः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१५. विमुक्ति मार्ग–प्रतिपादको यो,
यो जन्म–मृत्युर्व्यसनाद् व्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी सकलोऽकलंकः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१६. क्रोडीकृताशेष – शरीरि वर्गा,
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरीन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

१२. जो परमात्मा बड़े-बड़े ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों के समूह द्वारा स्मरण किया जाता है, जिसकी सब बड़े-बड़े छः खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती आदि मनुष्य और देवेन्द्र स्तुति करते हैं और जिसकी महिमा द्वादशांग रूप वेद व बड़े-बड़े पुराणों, शास्त्रों ने गाई है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में आकर विराजमान हो ।

१३. जो अनन्त दर्शन, ज्ञान, अनन्त सुखरूप स्वभाव को धारण करने वाला है, जो सम्पूर्ण संसार के विकार पैदा करने वाले परमाणुओं से रहित है; जो परमोत्कृष्ट ध्यान के द्वारा जानने योग्य है तथा जिसका नाम परमात्मा है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो ।

१४. जो जगत् के दुःख समूह को नष्ट करता है, जो इस जगत् में सर्व पदार्थों को देखता है, जो अन्तरंग में प्राप्त है और जो ध्यानियों द्वारा देखने योग्य है, वह देवाधिदेव मेरे अन्तरङ्ग में विराजमान हो ।

१५. जो मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करने वाला है, जो जन्म-मरण रूप कष्टों से दूर है, जो तीन लोक को देखने वाला है, देह व कर्म कलंक से रहित है, वह देवों का देव मेरे हृदय में विराजमान हो ।

१६. जिन रागादि दोषों को समस्त प्राणी धारण किये हुए हैं, उन रागादि दोषों, स्पर्शादि पांच इन्द्रियों तथा मन से जो रहित है, जो ज्ञानमय और अविनाशी है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय मन्दिर में विराजे ।

१७. यो व्यापको विश्वजनीन-वृत्तिः,
सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥

१८. न स्पृश्यते कर्मकलंक दोषैर्,
यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥

१९. विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमय-प्रकाशं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥

२०. विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं,
विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥

२१. येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा,
विषाद-निद्रा-भयशोक-चिन्ताः।
क्षयोऽनलेनेव तरु-प्रपंचस्,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥

१७. जो तीनों जगत के पदार्थों को देखने वाले ज्ञान की अपेक्षा से समस्त लोक के पदार्थों में व्याप्त है, सिद्ध है, बुद्ध है और कर्म बन्धनों का जिसने नाश कर दिया है जिसका भव्य जीव ध्यान करते हैं और जो उनके समस्त विकारों को नष्ट कर देता है वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो।

१८. जिस प्रकार अन्धकार सूर्य की किरणों का स्पर्श नहीं कर सकता, उसी प्रकार जो परमात्मा कर्म रूपी दोषों से नहीं स्पर्श किया जाता, जो कर्म रूपी अंजन से रहित है, जो वस्तु स्थिति की अपेक्षा नित्य और गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक है, द्रव्यापेक्षा एक है मैं उस आप्त देव की शरण में जाता हूं।

१९. जिस भगवान के विराजमान रहने पर तीन लोक को प्रकाशित करने वाला सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता। ऐसे अपनी आत्मा में स्थित ज्ञान रूप प्रकाशमय सच्चे देव की मैं शरण में जाता हूं।

२०. अवलोकन करने पर जिनके ज्ञान में यह जगत् अलग-अलग स्पष्ट दिखाई देता है अर्थात् जिसके ज्ञान में इस संसार के हर एक पदार्थ अलग-अलग स्पष्ट झलकते हैं, ऐसे शुद्ध कल्याण-स्वरूप, शान्त आदि अन्तरहित आप्त देव की मैं शरण लेता हूं।

२१. जिस प्रकार वृक्ष के समूहों को अग्नि भस्म कर देती है, उसी प्रकार जिस परमात्मा ने काम, अभिमान, मूर्च्छा, खेद, निद्रा, भय, शोक और चिन्ता को नष्ट कर दिया है उस आप्त देव की शरण में प्राप्त होता हूं।

२२. न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिर्मितः ।
यतो निरस्ताक्ष – कषायविद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥

२३. न संस्तरो भद्र ! समाधि-साधनं,
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्य वासनाम् ॥

२४. न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां न कदाचनाऽहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र ! मुक्त्यैः ॥

२५. आत्मानमात्मन्यविलोक्यमानस्,
त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र,
स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥

२६. एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा,
विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता,
न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥

२२. सामायिक के लिए विधान से न तो पत्थर को ही आसन माना है, न घास को, न पृथ्वी को और न काष्ठ की चौकी आदि को। इसलिए जिस आत्मा ने काम-कषाय रूपी शत्रु को नष्ट कर डाला है वह निर्मल आत्मा ही विद्वानों द्वारा आसन माना गया है।

२३. हे भव्य ! वास्तव में समाधि (सामायिक) का साधन न तो सन्थारा ही है, न लोगों की पूजा और न संघ का सम्मेलन ही है। इसलिए तू सम्पूर्ण बाहिर की वासनाओं को छोड़ कर आत्मा में लवलीन हो।

२४. मेरी आत्मा से बाहर के जो कुछ भी पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं और मैं भी उनका कभी नहीं हूं। हे भद्र ! इस बात का निश्चय कर बाह्य सम्बन्धी बातों को छोड़ कर मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वथा ही अपनी आत्मा में स्थिर हो।

२५. अपने को अपने में अवलोकन करने वाला तू दर्शन, ज्ञानमय और निर्मल है। जहां कोई साधु अपने चित्त को एकाग्र कर ध्यान में स्थिर होता है, वहां वह समाधि को प्राप्त करता है।

२६. मेरी आत्मा सदा एक, कभी विनाश को प्राप्त नहीं होने वाली, निर्मल और केवल ज्ञान स्वरूप है और मेरी आत्मा से बाहर के समस्त पदार्थ अपने ही कर्मों से हुए हैं, वे अविनाशी नहीं हैं, उनकी अवस्था बदलती रहती है।

२७. यस्यास्ति नैक्यं वपुषाऽपि सार्द्धं,
तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः ?
पृथक् कृते चर्मणि रोमकूपाः,
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर-मध्ये।

२८. संयोगतो दुःखमनेकभेदं,
यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधाऽसौ परिवर्जनीयो,
यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥

२९. सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं,
संसार कान्तार निपातहेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो,
निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥

३०. स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥

३१. निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः,
परो ददातीति विमुंच शेमुषीम् ॥

२७. जिस आत्मा की शरीर के साथ भी एकता नहीं है, उस आत्मा की पुत्र, स्त्री, मित्रादि के साथ कैसे एकता हो सकती है ? यदि शरीर पर से चमड़ा दूर कर दिया जाय तो उस शरीर में रोमों के छेद कहां ठहर सकते हैं ? वे तो शरीर के आश्रय में ही रहते हैं, बिना शरीर छेद नहीं रहते ।

२८. संसार रूपी वन में यह देही बाहर के पदार्थों के सम्बन्ध से नाना प्रकार के दुःखों को पाता है । इसलिए अगर जीव इन बाह्य पदार्थों के संयोग जनित दुःखों से निवृत्ति अर्थात् मुक्ति चाहता है तो यह जीव इस संयोग को मन, वचन, काया से छोड़ दे ।

२९. संसार रूपी वन में भटका देने वाले समस्त विकल्प समूह को दूर करके तू अपनी आत्मा को सबसे भिन्न देखता हुआ, परमात्म तत्व के चिन्तन में लवलीन हो ।

३०. आत्मा पूर्व काल से जो कुछ भी कर्म करता आ रहा है, उसका शुभाशुभ फल स्वयं वही पाता है । यदि कर्म के विना दूसरे का दिया फल प्राप्त होने लगे तो यह स्पष्ट है कि अपने आपका किया हुआ कर्म फल व्यर्थ ही हो जाय ।

३१. जीव अपने किए हुए कर्मों का ही फल पाता है । अपने उपार्जित कर्मों को छोड़ कर कोई भी किसी को कुछ नहीं देता, इस प्रकार का विचार करते हुए 'दूसरा देता है' ऐसी बुद्धि त्याग कर स्व में एकाग्रचित होना योग्य है ।

३२. यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः,
सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः ।
शाश्वदधीतो मनसि लभन्ते,
मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥

(११)

रत्नाकर पंचविंशतिका (पच्चीसी)

१. श्रेयः श्रियां मङ्गल – केलिसद्म !
नरेन्द्र – देवेन्द्र – नताङ्घ्रिपद्म !
सर्वज्ञ ! सर्वातिशय – प्रधान !
चिरं जय ज्ञान – कला निधान !

२. जगत्त्रयाधार ! कृपावतार !
दुर्वार – संसार – विकार – वैद्य !
श्री वीतराग ! त्वयि मुग्धभावाद्,
विज्ञ ! प्रभो ! विज्ञपयामि किंचित् ॥

३. किं बाललीलाकलितो न बालः,
पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः ?
तथा यथार्थं कथयामि नाथ ?
निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे ॥

४. दत्तं न दानं, परिशीलितं च,
न शालि शीलं, न तपोऽभितप्तम् ।

शुभो न भावोऽप्यभवद् भवेऽस्मिन्,
विभो ! मया भ्रान्तमहो ! मुधैव ॥

५. दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्य – महोरगेण ।
ग्रस्तोऽभिमानाजगरेण माया-जालेन,
बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ?

६. कृतं मयाऽमुत्र हितं न चेह,
लोकेऽपि लोकेश ! सुखं न मेऽभूत् ।
अस्मादृशां केवलमेव जन्म,
जिनेश जज्ञे भव – पूरणाय ॥

७. मन्ये मनो यन्न मनोज्ञवृत्त !
त्वदास्यपीयूष मयूखलाभात् ।
द्रुतं महानन्दरसं कठोर–
मस्मादृशां देव ! तदश्मतोऽपि ॥

८. त्वत्तः सुदुष्प्राप्यमिदं मयाप्तं,
रत्नत्रयं भूरिभव – भ्रमेण ।
प्रमाद – निद्रावशतो गतं तत्,
कस्याग्रतो नायक ! पूत्करोमि ?

९. वैराग्य – रङ्गः पर – वञ्चनाय,
धर्मोपदेशो जन – रञ्जनाय ।

शुभ भावना मेरी हुई अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूं व्यर्थ ही भ्रम से भवोदधि-धार में ।।

५. क्रोधाग्नि से मैं रातदिन हा ! जल रहा हूं हे प्रभो !
मैं लोभ नामक सांप से काटा गया हूं हे विभो !
अभिमान के खल ग्राह से अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूं,
किस भांति हों स्मृत आप माया-जाल में मैं व्यस्त हूं ।।

६. लोकेश ! पर-हित भी किया मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, चीखता हूं शोक में ।
मुझ तुल्य ही नर-नारियों का जन्म जग में व्यर्थ है,
मानो जिनेश्वर ! वह भवों की पूर्णता के अर्थ है ।।

७. प्रभु ! आपने निज मुख-सुधा का दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है, पर चित्त ने उसका न कुछ भी फल लिया ।
आनन्द-रस में डूब कर सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र-सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ।।

८. रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहुबार जब जग का भ्रमण मैंने किया ।
हां ! खो गया वह भी अलस, मैं नींद में सोता रहा,
अब बोलिए उसके लिये रोऊँ प्रभो ! किसके यहां ?

९. संसार ठगने के लिये वैराग्य को धारण किया,
जग को रिझाने के लिये उपदेश धर्मों का दिया ।

वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत,
कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश !

१०. परापवादेन मुखं सदोषं,
नेत्रं परस्त्रीजन – वीक्षणेन।
चेतः परापाय – विचिन्तनेन,
कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम् ?

११. विडम्बितं यत् स्मर – घस्मरार्ति,
दशावशात् स्वं विषयांधलेन।
प्रकाशितं तद् भवतो ह्रियैव,
सर्वज्ञ ! सर्वं स्वयमेव वेत्सि ।।

१२. ध्वस्तोऽन्य – मंत्रैः परमेष्ठि मंत्रः,
कुशास्त्रवाक्यैर् निहतागमोक्तिः।
कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसङ्गा–
दवाञ्छि ही नाथ ! मतिभ्रमो मे ।।

१३. विमुच्य दृग्लक्ष्यगतं भवन्तं,
ध्याता मया मूढधिया हृदन्तः।
कटाक्ष - वक्षोज - गभीर - नाभि–
कटीतटीयाः सुदृशां विलासाः ।।

१४. लोलेक्षणावक्त्र निरीक्षणेन,
यो मानसे रागलवो विलग्नः।

झगड़ा मचाने के लिये मम जीभ पर विद्या वसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाई, हे प्रभो ! अपनी हंसी ।।

१०. पर दोष को कह जीभ मेरी है सदा दूषित हुई,
लख कर पराई नारियां हा ! आंख भी दूषित हुई ।
मन भी मलिन है सोच कर पर की बुराई हे प्रभो !
किस भांति होगी लोक में मेरी भलाई ऐ विभो !

११. मैंने वढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई उत्पन्न जो दुख राक्षसी ।
हा ! आपके सम्मुख उसे अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ ! हो सब जानते स्वयमेव संसृति की क्रिया ।।

१२. अन्यान्य मंत्रों से परम परमेष्ठि मन्त्र हटा दिया,
सद्-शास्त्र वाक्यों को कुशास्त्रों से दवा मैंने दिया ।
विधि उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्या-क्या किया ?

१३. हा तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
आराधना की मूढ़तावश मूढ़ लोगों की विभो !
वामांगियों के कुछ कटाक्षों पर सदा मरता रहा,
उनके विलासों का हृदय में ध्यान मैं धरता रहा ।।

१४. लखकर चपल दृग युवतियों के मुख मनोहर रसमयी,
मम मन पटल पर राग-भावों की मलिनता बस गई ।

न शुद्धसिद्धान्त – पयोधिमध्ये,
धौतोऽप्यगात् तारक ! कारणं किम् ।।

१५. अंगं न चंग न गणो गुणानां,
न निर्मलः कोऽपि कलाविलासः ।
स्फुरत्प्रभा न प्रभुता च काऽपि,
तथाऽप्यहंकार – कदर्थितोऽहम् ।।

१६. आयुर्गलत्याशु न पापबुद्धिर्,
गतं वयो नो विषयाभिलाषः ।
यत्नश्च भैषज्य – विधौ न धर्मः,
स्वामिन् ! महामोह-विडम्बना मे ।।

१७. नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं,
मया विटानां कटुगीरपीयम् ।
आधारि कर्णे त्वयि केवलार्के,
परिस्फुटे सत्यपि देव ! धिग्माम् ।।

१८. न देव पूजा न च पात्रपूजा,
न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः ।
लब्ध्वाऽपि मानुष्यमिदं समस्तं,
कृतं मयारण्य – विलापतुल्यम् ।।

१९. चक्रे मयाऽसत्स्वपि कामधेनु–
कल्पद्रु – चिन्तामणिषु स्पृहार्तिः ।

वह शास्त्र निधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई,
बतलाइये प्रभु आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई ।।

१५. मुझमें न अपने अंग के सौन्दर्य का आभास है,
मुझमें न गुण-गण है विमल, मुझमें न कला-विलास है ।
प्रभुता न मुझमें स्वप्न की भी है चमकती देखिये,
तो भी भरा हूं गर्व से मैं मूढ़ हो किसके लिये ।।

१६. हा ! नित्य घटती आयु है पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुढ़ौती पर विषय अरु वासना हटती नहीं ।
मैं यत्न करता हूं दवा में, धर्म में करता नहीं,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूं, नाथ ! बच सकता नहीं ।।

१७. अघ पुण्य को, जग, आत्म को मैंने कभी माना नहीं,
हा ! आप आगे हैं खड़े सर्वज्ञ रवि यद्यपि यहीं ।
तो भी खलों के वाक्य को मैंने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म ही मानो वृथा ।।

१८. सत्पात्र–पूजन देव–पूजन कुछ नहीं मैंने किया,
मुनि धर्म, श्रावक धर्म, भी विधिवत् नहीं पालन किया ।
नर–जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन में व्यर्थ ही रोता रहा ।।

१९. हा ! कामधुक्- कल्पद्रुमादिक, के यहां रहते हुए,
मैंने गंवाया जन्म को, धिक् लाख-दुःख सहते हुए ।।

न जैनधर्मे स्फुटशर्मदेऽपि,
जिनेश ! मे पश्य विमूढ़भावम् ॥

२०. सद्भोग – लीला न च रोगकीला,
धनागमो नो निधनागमश्च ।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते,
व्यचिन्ति नित्यं मयकाऽधमेन ॥

२१. स्थितं न साधोर्हृदि साधुवृत्तात्,
परोपकारान्न यशोर्जितं च ।
कृतं न तीर्थोद्धरणादि-कृत्यं,
मया मुधा हारितमेव जन्म ॥

२२. वैराग्यरङ्गो न गुरूदितेषु,
न दुर्जनानां वचनेषु शान्तिः ।
नाऽध्यात्मलेशो मम कोऽपि देव,
तार्यः कथंकारमयं भवाब्धिः ?

२३. पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्य-
मागामि जन्मन्यपि नो करिष्ये ।
यदीदृशोऽहं मम तेन नष्टा,
भूतोद्भवद्भावि भवत्रयीश !

२४. किं वा मुधाऽहं वहुधा सुधाभुक्-
पूज्य ! त्वदग्रे चरितं स्वकीयम् ?

प्रत्यक्ष सुखकर जैन मत में, प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ ! मेरी देखिये, है मूढ़ता भारी यही ।

२०. मैंने न रोका रोग-दुःख, संभोग-सुख देखा किया,
मन में न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ का लेखा किया ।
हा ! मैं अधम पुद्गल सुखों का ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ।।

२१. सद्वृत्ति से मन में न मैंने, साधुता हा ! साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता ।
चउ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाया नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज, मैंने गंवाया व्यर्थ ही ।।

२२. शास्त्रोक्त-विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं,
खल-वाक्य भी गत-क्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं ।
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला,
फिर देव ! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला ।।

२३. सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्य में, उसको करूंगा मैं कहीं ।
इस भांति का यदि हूं जिनेश्वर ! क्यों न मुझको कष्ट हो ?
संसार में फिर जन्म मेरे, त्रिविध कैसे नष्ट हों ।।

२४. हे पूज्य ! अपने चरित को, बहुभांति गाऊं क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुझ से छिपी है पापमय मेरी कथा ।

जल्पामि यस्मात् त्रिजगत्स्वरूप-
निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ?

२५. दीनोद्धार – धुरंधरस्त्वदपरो, नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नाऽत्र जने जिनेश्वर ! तथा-ऽप्येतां न याचे श्रियम् ।
किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो, सद्बोधि – रत्नं शिवम्,
श्री रत्नाकर – मंगलैकनिलय ! श्रेयस्करं प्रार्थये ।।

—:o:—

"स्मृतेन येन पापोऽपि, जन्तुः स्यान्नियतं सुरः ।
परमेष्ठि नमस्कारमंत्रं तं स्मर मानसे" ।।
(उत्तराध्ययन टीका)

"जिसके स्मरणमात्र से पापी प्राणी भी निश्चित-रूप से देवगति को प्राप्त करता है, उस परमेष्ठी नमस्कार मंत्र का आप मन में स्मरण-रटन करें ।"

———

"पारस जिस धातु को छूता है उसे स्वर्ण बना देता है उसी तरह श्री नवकार मंत्र का मंगल जिसके अन्तः-करण में है उसे पूर्ण मंगल रूप बनादेता है, सिद्ध-रूप बनादेता है—स्व स्वरूप शुद्ध-बुद्ध बनादेता है ।"

क्योंकि त्रिजग के रूप हो तुम, ईश हो सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं, मम चित्त के मर्मज्ञ हो ।।

२५. दीनोद्धारक धीर आप सा अन्य नहीं है,
कृपा–पात्र भी नाथ ! न मुझसा अपर कहीं है ।
तो भी मांगू नहीं धान्य धन कभी भूल कर,
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न दें मुझे मंगल-कर ।
श्री रत्नाकर गुण-गान यह दुरित दुःख सब के हरे,
अब एक यही है प्रार्थना मंगल–मय जग को करे ।।

—:०:—

"अनादि असमदर्शित्व भाव को बदलने के लिये एकाग्रता और उपयोगपूर्वक पुरुषार्थ करके आत्म-समदर्शित्व का भाव विकसित करना मानव-जीवन का श्रेष्ठ पुरुषार्थ है । श्री नमस्कार मंत्र की यह उत्कृष्ट भाव-भक्ति है । सब भगवन्तों का यह मुख्य उपदेश है । प्रभु-भक्ति का यह उत्तमोत्तम प्रकार है ।"

"सारे जगत के समस्त जीवों के साथ जब तक समदर्शीपन नहीं आता है तब तक जीव मोक्ष का अधिकारी नहीं बन सकता । जगत् के सब जीवों की भलाई की इच्छा करना और इसके लिये यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से प्रयत्न करना यह परमेष्ठि महामंत्र की साधना में सबसे इष्ट वस्तु है ।"

(१२)

श्री परमानन्द-पंचविंशतिका

१. परमानन्द-संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निज-देहे व्यवस्थितम् ॥

२. अनन्तसुख-सम्पन्नं ज्ञानामृत-पयोधरम् ।
अनन्तवीर्य-सम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥

३. निर्विकारं निराधारं, सर्वसंगविवर्जितम् ।
परमानन्द-सम्पन्नं, शुद्धचैतन्य-लक्षणम् ॥

४. उत्तमाऽध्यात्मचिन्ता च, मोह-चिन्ता च मध्यमा ।
अधमा कामचिन्ता च, परचिन्ताऽधमाधमा ॥

५. निर्विकल्पं समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम् ।
विवेकमंजलिं कृत्वा, तं पिबन्ति तपस्विनः ॥

६. सदानंदमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः ।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्द-कारणम् ॥

७. नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा ।
तथैवात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति सर्वदा ॥

८. द्रव्यकर्म-विनिर्मुक्तं, भावकर्म-विवर्जितम् ।
नोकर्म-रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मकम् ॥

९. अनंतब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥

१०. तद् ध्यानं क्रियते भव्यैर्, येन कर्म विलीयते ।
तत् क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्च-चमत्कारलक्षणम् ॥

११. चिदानंदमयं शुद्धं निराकारं निरामयम् ।
अनंत – सुखसम्पन्नं, सर्वसंगविवर्जितम् ।।

१२. लोकमात्रप्रमाणो हि, निश्चये न हि संशयः ।
व्यवहारे देहमात्रो, कथयन्ति मुनीश्वराः ।।

१३. यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः ।
स्वस्थचित्तं स्थिरीभूतं, निर्विकल्पं समाधिना ।।

१४. स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुंगवः ।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ।।

१५. स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मकम् ।।

१६. स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम् ।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमं शिवम् ।।

१७. स एव ज्ञानरूपो हि, स एवात्मा न चाऽपरः ।
स एव परमा शान्तिः, स एव भवतारकः ।।

१८. स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः ।
स एव घन-चैतन्यं, स एव गुण-सागरः ।।

१९. परमाह्लाद – सम्पन्नं, राग – द्वेषविवर्जितम् ।
सोऽहं तु देहमध्यस्थं, यो जानाति स पण्डितः ।।

२०. आकार – रहितं शुद्धं, स्वस्वरूपे व्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ।।

२१. तत्समं तु निजात्मानं, यो जानाति स पण्डितः ।
सहजानंद – चैतन्यं, प्रकाशयति महीयसे ।।

२२. पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्ध – मध्ये यथा घृतम् ।
तिल – मध्ये यथा तैलं, देह – मध्ये तथा शिवः ॥

२३. काष्ठमध्ये यथा वह्निः शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥

२४. आनन्द – रूपं परमात्मतत्त्वं,
समस्त – संकल्पविकल्प – मुक्तम् ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं,
जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ॥

२५. ये धर्मशीला मुनयः प्रधानास्,
ते दुःखहीना नियतं भवन्ति ।
संप्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं,
व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमध्ये ॥

(१३)

मंगल–भावना

१. जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदास्तु मे,
सम्यक्त्वमेव संसार – वारणं मोक्षकारणम् ।

२. श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः, श्रुते भक्तिः सदास्तु मे,
सज्ज्ञानमेव संसार – वारणं मोक्षकारणम् ।

३. गुरौ भक्तिर् गुरौ भक्तिर्, गुरौ भक्तिः सदास्तु मे,
चारित्रमेव संसार – वारणं मोक्षकारणम् ॥

(१)

मांगलिक

१. चत्तारि मंगलं–अरिहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं । साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

२. चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

३. चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंते सरणं पव्वज्जामि । सिद्धे सरणं पव्वज्जामि । साहू सरणं पव्वज्जामि । केवलि–पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

(अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं केवली प्रणीत (कथित) धर्म—ये चारों मंगल हैं, लोकोत्तम हैं, मैं इन चारों की शरण लेता हूं ।)

ए चार शरणा, दुख हरणा और न शरणो कोय,
जे भवि प्राणी आदरे ते अक्षय अमर पद होय ।

(२)

१. धम्मो मंगल महिमानिलो, धर्म-समो नहिं कोय ।
धर्म-चकी नमे देवता, धर्मे शिव सुख होय ॥ध०॥

२. जीवदया नित पालिये, संजम सतरह प्रकार ।
बारा-भेदे तप तपे, धर्म तणो यह सार ॥ध०॥

३. जिम तरुवरने फूलड़े, भमरो रस लेवा जाय ।
तिम सन्तोषे आतमा, फूलने पीड़ा नहिं थाय ॥ध०॥

४. इण विध जावे गोचरी, वेहरे[1] सूझतो आहार ।
ऊंच-नीच मध्यम कुले, धन-धन ते अणगार ॥ध०॥

५. मुनिवर मधुकर-सम कह्या, नहिं तृष्णा नहिं लोभ ।
लाध्यो भाड़ो देवे देहने, अणलाध्यां सन्तोष ॥ध०॥

६. अध्ययन पहले द्रुमपुष्फिये, सखरा अर्थ-विचार ।
पुण्यकलश-शिष्य जेतसी, धर्मे जय-जयकार ॥ध०॥

(३)

१. अरिहन्त जय जय, सिद्ध प्रभु जय जय ।
साधु जीवन जय जय, जिन धर्म जय जय ॥

२. अरिहंत मंगल, सिद्ध प्रभु मंगल ।
साधु जीवन मंगल, जिन धर्म मंगल ॥

---

१. वहरे=लेवे

३. अरिहन्त उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम।
साधु जीवन उत्तम, जिन धर्म उत्तम॥

४. अरिहन्त शरणं, सिद्ध प्रभु शरणं।
साधु जीवन शरणं, जिन धर्म शरणं॥

५. ए चार शरण दुःखहरण जगत् में,
और न शरणा कोई होगा।

जो भवि प्राणी करें आराधन,
उनका अजर अमर पद होगा॥

(४)

१. ॐ जय अरिहन्ताणं, प्रभु जय अरिहन्ताणं।
भाव भक्ति से नित्य प्रति, प्रणमूं सिद्धाणं॥ॐ जय॥

२. दर्शन ज्ञान अनन्ता, शक्ति के धारी॥ स्वामी॥
यथाख्यात समकित है, कर्मशत्रु हारी॥ॐ जय॥

३. हे सर्वज्ञ ! सर्व दर्शी ! बल, सुख अनन्त पाये॥ स्वामी॥
अगुरुलघु अमूरत अव्यय कहलाये॥ॐ जय॥

४. णमो आयरियाणं, छत्तीस गुण पालक॥ स्वामी॥
जैन धर्म के नेता, संघ के संचालक॥ॐ जय॥

५. णमो उवज्झायाणं, चरण करण ज्ञाता॥ स्वामी॥
अंग-उपांग पढ़ाते, ज्ञान दान दाता॥ॐ जय॥

६. णमो लोए सव्व साहूणं, ममता मद हारी॥ स्वामी॥
सत्य अहिंसा अस्तेय, ब्रह्मचर्य धारी॥ॐ जय॥

७. 'चौथमल्ल' कहे शुद्ध मन, जो नर ध्यान धरे ॥ स्वामी॥
पावन पंच-परमेष्ठी, मंगलाचार करे ॥ॐ जय॥

(५)

१. वांछित पूरे विविध परे, श्री जिन शासन सार।
निश्चय श्री नवकार नित, जपतां जय जय कार॥

२. अड़सठ अक्षर अधिक फल, नवपद नवे निधान।
वीतराग स्वयं मुख वदे, पंच परमेष्ठि प्रधान॥

३. एकज अक्षर एकज चित्ते, सुमर्या संपत्ति थाय।
संचित सागर सातना, पातक दूर पलाय॥

४. सकल मंत्र शिर मुकुट मणि, सद्गुरु भाषित सार।
सो भवियां मन शुद्ध से, नित जपिये नवकार॥

५. सुमरो मंत्र भलो नवकार, ए छे चौदह पूर्व नो सार।
एहनी महिमा नो नहिं पार, एहनो अर्थ अनंत अपार॥

६. सुख मां सुमरो, दुःख मां सुमरो, सुमरो दिवस ने रात।
जीवंतां सुमरो, मरंतां सुमरो, सुमरो सौ संगाथ॥

७. योगी सुमरे, भोगी सुमरे, सुमरे राजा रंक।
देवा सुमरे, दानव सुमरे, सुमरे सौ निशंक॥

८. अड़सठ अक्षर एहना जाणो, अड़सठ तीरथ सार।
आठ संपदा थी परमाणो, अष्ट सिद्धि दातार॥

९. नव पद एहना नव निधि आपे, भवो भवना दुख कापे।
'चन्द्र' वचन थी हृदये व्यापे, परमातम पद आपे॥

(६)

१. सुख कारण, भवियण, सुमरो नित नवकार।
जिन शासन आगम, चौदह पूर्व नो सार॥
इण मंत्रनी महिमा, कहेतां न लहिये पार।
सुर तरु-जिम चिंतित, वांछित फल दातार॥

२. सुर दानव मानव, सेवा करें कर जोड़।
भू मण्डल विचरें, तारे भवियण कोड़॥
सुर छन्दे विलसें, अतिशय जास अनन्त।
पद पहिले नमिये, अरिगंजन अरिहन्त॥

३. जे पन्द्रह भेदे, सिद्ध यथा भगवन्त।
पंचम गति पहुंचे, अष्ट कर्म करि अन्त॥
कल अकल स्वरूपी, पंचानन्तक देह।
जिनवर-पद प्रणमूं, बीजे पद वलि एह॥

४. गच्छ - भार - धुरंधर, सुन्दर शशिहर शोभ।
कर सारण वारण, गुण छत्रीसे थोभ॥
श्रुतजाण शिरोमणि, सागर जिम गम्भीर।
तीजे पद नमिये, आचारज गुणधीर॥

५. श्रुतधर गुण-आगर, सूत्र भणावें सार।
तप विधि संयोगे, भाखें अर्थ विचार॥
मुनिवर गुण - युक्ता, कहिये ते उवज्झाय।
पद चौथे नमिये, अह - निश तेहना पाय॥

६. पंचाश्रव टालें, पालें पंचाचार।
तपसी गुणधारी, वारें विषय-विकार॥

त्रस थावर-पीहर, लोक माँहि जे साध।
त्रिविधे ते प्रणमूं, परमारथ जिण लाध॥

७. अरि करि हरि सायण, डायण भूत वेताल।
सब पाप पणासे, बरते मंगल-माल॥
इण सुमर्या संकट, दूर टले तत्काल।
इम जंपै 'जिनप्रभ', सूरी शिष्य रसाल॥

(७)

सुवह और शाम की, प्रभूजी के नाम की, फेरो इक माला ॥टेर॥

१. सकल सार नवकार मंत्र यह परमेष्ठी की माला,
नर्कादिक दुर्गति का सचमुच जड़ देती है ताला।
कर्मों का जाला, मिटे तत्काला—फेरो०

२. सुदर्शन और सीता ने जब फेरी थी यह माला,
शूली भी सिंहासन हो गई, शीतल हो गई ज्वाला।
धर्म का प्याला, पीओ प्यारे लाला—फेरो०

३. सुमिरण कर सोमा ने भी, नाग उठाया काला,
महा भयंकर विषधर था वो वनी फूल की माला।
शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला—फेरो०

४. द्रौपदी का चीर वढ़ाया, दुःशासन मद गाला,
मैनासुन्दरी श्रीपाल का जीवन वना विशाला।
सुभद्राजी महिला, चम्पा द्वार खोला—फेरो०

५. वालकुमारी राजदुलारी, देखो चंदनवाला,
दुःख भयंकर पाई फिर भी शिर मुंडा था मूला।
तपस्या का तेला, सव दुःख झेला—फेरो०
गावो गुण भोला 'हरि ऋषि' वोला—फेरो०

(८)

अजर अमर अखिलेश निरंजन जयति सिद्ध भगवान् ।।टेर।।

१. अगम अगोचर तू अविनाशी, निराकार निर्भय सुख राशी ।
निर्विकल्प निर्लेप निरामय, निष्कलंक निष्काम—ज०

२. कर्म न काया मोह न माया, भूख न तिरखा रंक न राया ।
एक स्वरूप अरूप अगुरु लघु, निर्मल ज्योति महान्—ज०

३. हे अनन्त ! हे अन्तरयामी ! अष्ट गुणों के धारक स्वामी !
तुम बिन दूजा देव न पाया, त्रिभुवन से उपराम—ज

४. गुरु निर्गन्थों ने समझाया, सच्चा प्रभु का रूप बताया ।
अब मैं तुम में ही मिल जाऊं, ऐसा दो वरदान—ज

५. 'सूर्य चन्द्र' है शरण तुम्हारी, प्रभु मेरी करना रखवारी ।
तुम में मुझ में भेद न पाऊं, ऐसा हो संधान—ज
—जय जय जय भगवान् !

(९)

१. अविनाशी अविकार, परम रसधाम हे !
समाधान सर्वज्ञ, सहज अभिराम हे !

२. शुद्ध बुद्ध अनिरुद्ध, अनादि अनन्त हे !
जगत शिरोमणि सिद्ध, सदा जयवंत हे !

(१०)

१. तुम तरण-तारण दुःख निवारण, भविक जीव आराधनम् ।
श्री नाभिनन्दन जगत-वन्दन, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

२. जगत-भूषण विगत दूषण, प्रणव प्राण निरूपकम् ।
ध्यान-रूपं अनूप उपमं, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

३. गगन-मंडल मुक्ति-पदवी, सर्व-ऊर्ध्व-निवासनम् ।
ज्ञान-ज्योति अनन्त राजे, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

४. अज्ञाननिद्रा विगत-वेदन, दलित मोह निरायुपम् ।
नाम-गोत्र-निरंतरायं, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

५. विकट क्रोधा मान योधा, माया लोभ विसर्जनम् ।
रागद्वेष-विमर्द अंकुर, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

६. विमल केवलज्ञान-लोचन, ध्यान-शुक्ल-समीरितम् ।
योगिनां अतिगम्य रूपं, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

७. योग ने समोसरण मुद्रा, परिपल्यंक-आसनम् ।
सर्व दीसे तेज-रूपं, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

८. जगत जिनके दास दासी, तास आस निरासनम् ।
चन्द्र पैं परमानन्द-रूपं, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

९. स्व-समय समकित दृष्टि जिनकी, सोय योगी अयोगिकम् ।
देखतामां लीन होवे, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१०. चन्द्र सूर्य दीप मणि की, ज्योति येन उल्लंघितम् ।
ते ज्योति थी अपरं ज्योति, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

०१. तीर्थसिद्धा अतीर्थ सिद्धा, भेद पंचदशाधिकम् ।
सर्व-कर्म-विमुक्त चेतन, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१२. एक मांहीं अनेक राजे, अनेक मांहीं एककम् ।
एक अनेक की नाहिं संख्या, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१३. अजर अमर अलख अनंत, निराकार निरंजनम् ।
परब्रह्म ज्ञान अनंत दर्शन नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१४. अतुल सुख की लहर में, प्रभु लीन रहे निरंतरम् ।
धर्मध्यान थी सिद्ध दर्शन, नमो सिद्ध निरंजनम् ।।

१५. ध्यान धूपं मनः पुष्पं, पंचेन्द्रिय-हुताशनम् ।
क्षमा जाप संतोष पूजा, पूजो देव निरंजनम् ।।

१६. तुम मुक्ति-दाता कर्म-घाता, दीन जन करुणाकरम् ।
सिद्धार्थ-नन्दन जगत-वन्दन, महावीर जिनेश्वरम् ।।

(११)

सेवो सिद्ध सदा जयकार, जांसे होवे मंगलाचार ।।टेर।।

१. अज, अविनाशी, अगम, अगोचर, अमल, अचल, अविकार ।
अन्तर्यामी त्रिभुवन स्वामी, अमित शक्ति भण्डार—सेवो०

२. कर पणट्ठ कम्मट्ठ अट्ठ-गुण, युक्त मुक्त-संसार ।
पायो पद परमिट्ठ तास पद, वन्दों बारंबार—सेवो०

३. सिद्ध प्रभु को सुमिरण जग में, सकल सिद्धि दातार ।
मनवांच्छित पूरण सुरतरु सम, चिन्ता चूरण हार—सेवो०

४. जपे जाप योगीश रात दिन, ध्यावे हृदय मंझार ।
तीर्थङ्कर हुं प्रणमें उनको, जब होवें अणगार—सेवो०

५. सूर्योदय के समय भक्तियुत, स्थिर चित दृढ़ता धार।
जपे 'सिद्ध' यह जाप तास घर, होवे ऋद्धि अपार—सेवो०

६. सिद्ध स्तुति यह पढ़े भाव से, प्रतिदिन जो नर नार।
सो दिव-शिव—सुख पावे निश्चय, बना रहे सरदार—सेवो०

७. 'माधव' मुनि कहे सकल संघ में बढ़े हमेशा प्यार।
विद्या विनय विवेक समन्वित, पावें प्रचुर प्रचार—सेवो०

(१२)

१. रिषभ अजित जिननाथ, सम्भव अभिनंदना।
सुमति पदम सुपार्श्व चंदा प्रभु वन्दना ॥

२. सुविधि शीतल श्रेयांस, के वासुपूज्य ध्याइए।
विमल अनन्त धर्मनाथ, शान्ति गुण गाइए ॥

३. कुंथु अरह मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत निर्मला।
नेमि अरिष्ठ नमिनाथ, पार्श्व महावीर भला ॥

४. ए चौबीसी ना नाम, के नित्य प्रति भजो।
हिंसा झूठ अदत्त मैथुन, परिग्रह तजो ॥

५. ए चौवीसीना नाम, के नित्य प्रातः ध्याइए।
जन्म मरण दुःख दूर, मुक्ति पद पाइए ॥

६. वीसे वांदु विहरमाण, इग्यारे वांदु गणधरा।
वे कर जोड़ी नमु शीप, के सच्चा जिनेश्वरा ॥

७. 'कवीश्वर' कहे कर जोड़, सुणो रे भवी प्राणीयां।
कर्म काटण ए उपाय, के जगमें जाणीयां ॥

८. सांचो ते श्री जिन धर्म, व्यसन वश मैं वस्यो ।
चाल्यो कुकर्मनी चाल, चौरासी मां भटकीयो ।

९. भम्यो अनंती काल, के धर्म विना कुगतिमां ।
प्रभुजी करजो मुझ ऊपर मेहर, के मेलजो मुक्तिमां ।।

(१३)

१. जिनजी पहला ऋषभदेव वान्दसांजी,
जिनजी दूजा अजितनाथ देव, पक्खी रा खमत खामणा जी ।
जिनजी तीजा संभवनाथ वान्दसांजी,
जिनजी चौथा अभिनन्दन देव, पक्खी रा खमत खामणा जी ।
जिनजी पन्द्रह दिनांरो पाप आलोचियो जी,
श्रावक शुद्ध मन लीजो रे खमाय—पक्खी रा०

२. जिनजी पांचवां, सुमतिनाथ वान्दसांजी,
जिनजी छट्ठा पदम प्रभु देव ।
जिनजी सातवां सुपार्श्वनाथ वान्दसांजी,
जिनजी आठवां चन्दा प्रभु देव—पक्खी रा०

३. जिनजी नवमां सुविधिनाथ वान्दसांजी,
जिनजी दसवां शीतलनाथ देव ।
जिनजी इग्यारवां श्रेयांस वान्दसांजी,
जिनजी बारवां वासुपुज्य देव—पक्खी रा०

४. जिनजी तेरवां विमलनाथ वान्दसांजी,
जिनजी चौदहवां अनन्त नाथ देव ।
जिनजी पन्द्रवां धरमनाथ वान्दसांजी,
जिनजी सोलवां शान्तिनाथ देव—पक्खी रा०

५. जिनजी सतरवां कुंथुनाथ वान्दसांजी,
जिनजी अठारवां अरनाथ देव ।
जिनजी उगणिसवां मल्लिनाथ वान्दसांजी,
जिनजी बीसवां मुनिसुव्रत देव—पक्खी रा०

६. जिनजी इक्कीसवां नमिनाथ वान्दसांजी,
जिनजी बाइसवां अरिष्टनेमी देव ।
जिनजी तेइसवां पारसनाथ वान्दसांजी,
जिनजी चोबीसवां महावीर देव—पक्खी रा०

७. जिनजी इग्यारा ही गणधर वान्दसांजी,
जिनजी बीस विहरमान देव ।
जिनजी अनन्त चौबीसी ने वान्दसांजी,
जिनजी तिरण तारण गुरुदेव—पक्खी रा०

(१४)

प्रातः ऊठ चौबीस जिनन्द को, सुमिरण कीजे भाव धरी ।।टेर।।

१. रिषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति सुमति दो कुमति हरी ।
पद्म सुपास चन्दा प्रभु ध्यावो, पुष्पदन्त हण्या कर्म अरी ।।

२. शीतल जिन श्रेयांस वासुपूज्य, विमल विमल बुध देत खरी ।
अनन्त धर्म श्री शांति जिनेश्वर, हरियो रोग असाध्य मरी ।।

३. कुंथु अरह मल्लि मुनिसुव्रत, नमी नेमि शिव-रमणी वरी ।
पार्श्वनाथ वर्द्धमान जिनेश्वर, केवल लह्यो भव ओघ हरी ।।

४. तुम सम नहिं कोई तारक दूजो, इण निश्चय मन मांही धरी ।
'त्रिलोकरिख' कहै जिम-तिम करिने, मुक्ति-श्री द्यो मेहर करी ।।

(१५)

१. प्रातः उठी ने सुमरिये हो, भविजन ! मंगलिक शरणा चार ।
आपदा मिटे संपदा हुवे हो, भविजन ! दौलतनां दातार ।।
हिरदे राखिए हो, भविजन ! मंगलिक शरणा चार ।।टेर।।

२. अरिहंत सिद्ध साधू तणां हो, भविजन ! केवलिभाषित धर्म ।
ये शरणा नित ध्यावतां हो, भविजन ! टूटें आठों कर्म ।।

३. वाटे घाटे चालतां हो, भविजन ! रात दिवस मंझार ।
ग्राम नगर पुर विचरतां हो, भविजन ! कष्ट निवारण हार ।

४. ये चारों सुखकारिया हो, भविजन ! ये चारों जग सार ।
ये चारों उत्तम कह्या हो, भविजन ! ये चारों हितकार ।।

५. डायण सायण भूतड़ा हो, भविजन ! सिंह बाघ ने सूर ।
वैरी दुश्मन चोरटा हो, भविजन ! रहें ते सगला दूर ।।

६. राखो शरणांरी आसथा हो, भविजन ! नेड़ो नहिं आवे रोग ।
आनन्द वरते इण नामथी हो, भविजन ! व्हाला तणों संयोग ।।

७. सुख साता वरते घणी हो, भविजन ! जो ध्यावे नर नार ।
परभव जातां जीव ने हो, भविजन ! एह तणो आधार ।।

८. मनचिन्तित मनोरथ फले हो, भविजन ! वरते क्रोड़ कल्याण ।
शुद्ध मने नित ध्यावतां हो, भविजन ! निश्चय कर निरवाण ।।

९. इण सरिखो शरणों नहीं हो, भविजन ! इण सरिखो नहिं नाम ।
इण सरिखो मित्र नहीं हो, भविजन ! गांव नगर पुर ठाम ।।

१०. दान शील तप भावना हो, भविजन ! ए जग में तत्व सार ।
करो आराधो भाव से हो, भविजन ! पामो मोक्ष द्वार ।।

११. जोड़ कीधी छै जुगति से हो, भविजन ! 'पाली' शैखे काल।
'ऋषि चौथमल' इम भणे हो, भविजन ! सुणजो बाल गोपाल।

(१६)

१. श्री ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन।
सुमति, पदम, सुपारस, मन-रंजन, चन्दा प्रभुजी ने सेवो॥
सुविधिनाथ, शीतल, गुण गाऊं।
श्री श्रेयांस, वासुपूज्य जी ने ध्याऊं, विमल, सुनिर्मल देवो॥

२. अनन्त, धरम, श्री शान्ति जिनेश्वर।
कुंथुनाथ अति हो अलबेलर, वंदू श्री अर नाथो॥
मल्लीनाथ मुनिसुव्रत, स्वामी।
नमि, नेमी, पारस, हितकामी, मिलियो सुगति नो साथो॥

३. चौबीसवां श्री वीर जिनेश्वर।
पर उपकारी प्रभु श्री परमेश्वर, पहुंता पद निरवाणो॥
ए चौबीसी रा नित गुण गावे।
दुःख दारिद्र ज्यांरा दूर पलावे, वरते कोड़ कल्याण॥

४. पुन्य जोगे मानव भव लीधो।
चौबीसे जिनवरजी आराधो, लावो लेवोजी तुम लेवो॥
ए चौबीस भजो सिर नामी।
मोटा प्रभु साहिब अन्तर्यामी, श्री मुक्ति तणां दातारो॥

(१७)

श्री जिन मुज ने पार उतारो, प्रभु मैं चाकर चरणां रो—श्रीजिन०
१. ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, निरंजन निराकारो।
सुमति पद्म सुपारस चंदा प्रभु, मेट्या है विषय विकारो—श्रीजिन०

२. सुविधि शीतल श्रेयांस वासुपूज्य, मुक्ति तणा दातारो ।
विमल अनंत धर्म शांति जिनेश्वर, साताकारी संसारो—श्रीजिन०

३. कुंथु अरह मल्लि मुनिसुव्रतजी, निवर्त्या संसारो ।
नमिनाथ नेम पारस महावीरजी, शासन रा सिरदारो—श्रीजिन०

४. ग्यारह गणधर बीस विहरमान, सर्व साधु अणगारो ।
अनंत चौवीसी ने नित नित वंदूं, कर दिया खेवा पारो—श्रीजिन०

५. अधम उधारण विरुद सुणि प्रभु, शरणो लियो चरणां रो ।
अधम उधारण परम पदारथ, अजंर अमर अविकारो—श्रीजिन०

६. राग द्वेष कर्म बीज महाबलियो, बालि कीनो सर्व छारो ।
केवलज्ञान ने केवल दर्शन, निज गुण लीना धारो—श्रीजिन०

७. दान शील तप भावना भावो, दया धर्म तत्व सारो ।
'ऋषि लालचन्द' इण पर विनवे, प्रभु मारो करो निस्तारो—श्रीजिन०

(१८)

श्री पैंसठिया यन्त्र का छन्द

(श्री चतुर्विंशति जिन स्तवन)

१. श्री नेमीश्वर सम्भव स्वाम, सुविधि धर्म शान्ति अभिराम ।
अनन्त सुव्रत नमिनाथ सुजाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

२. अजितनाथ चन्दा प्रभु धीर, आदीश्वर सुपार्श्व गम्भीर ।
विमलनाथ विमल जग जाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

३. मल्लिनाथ जिन मंगल-रूप, धनुष पचीस सुन्दर शुभरूप ।
श्री अरनाथ नमूं वर्धमान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

४. सुमति पद्म प्रभु अवतंस, वासुपूज्य शीतल श्रेयंस।
कुंथु पार्श्व अभिनन्दन भाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

५. इणपरे जिनवर संभारिए, दुःख दारिद्र विघ्न निवारिए।
पच्चीसे पैंसठ परमाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

६. इण भणतां दुःख नावे कदा, जो निज पासे राखो सदा।
धरिये पंचतणूं मन ध्यान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

७. श्री जिनवर नामें वांछित मिले, मन-वांछित सहु आशा फले।
'धर्म सिंह' मुनि नाम निधान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ॥

२२	३	९	१५	१६
१४	२०	२१	२	८
१	७	१३	१९	२५
१८	२४	५	६	१२
१०	११	१७	२३	४

(१९)

विनयचन्द चौवीसी

१. श्री ऋषभनाथ

१. श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिरनामी तुम भणी।
प्रभु अन्तरजामी आप, म्हो पर म्हेर करीजे हो,
मेटीजे चिन्ता मन तणी, म्हारा काटो पुराकृत पाप—
श्री आदीश्वर स्वामी ॥टेर॥

२. आदि धरम की कीधी हो, भरत क्षेत्र अवसर्पिणी काल में।
प्रभु जुगल्या धर्म निवार, पहिला नरवर मुनिवर हो।
तीर्थङ्कर जिन हुआ केवली, प्रभु तीरथ थाप्या चार—श्री०

३. मां 'मरु देवी' थांरी हो, गज हौदे मुक्ति पधारिया।
तुम जनम्यां ही परमाण, पिता 'नाभि' महाराजा हो।
भव देव तणो करि नर थया, प्रभु पाम्यां पद निर्वाण—श्री०

४. भरतादिक सौ नन्दन हो, वे पुत्री 'ब्राह्मी-सुन्दरी'।
प्रभु ए थांरा अंगजात, सघला केवल पाया हो।
समाया अविचल जोत में, कांई त्रिभुवन में विख्यात—श्री०

५. इत्यादिक बहु तार्या हो, जिन कुल में प्रभु तुम ऊपन्या।
कांई आगम में अधिकार, और असंख्या तार्या हो।
उद्धार्या सेवक आपरा, प्रभु शरणा ही आधार—श्री०

६. अशरण शरण कहीजे हो, प्रभु विरुद विचारो साहिबा।
कांई कहो गरीब निवाज, शरण तुम्हारी आयो हो।
हूं चाकर जिन चरणां तणो, म्हारी सुणिये अरज अवाज—श्री०

७. तूं करुणाकर ठाकुर हो, प्रभु धर्म दिवाकर जग गुरु।
कांई भव दुःख दुष्कृत टाल, 'विनयचन्द' ने आपो हो।
प्रभु निजगुण संपत शाश्वती, प्रभु दीनानाथ दयाल—श्री०

२. श्री अजितनाथ

१. श्री जिन 'अजित' नमुं जयकारी तूं देवन को देवजी।
'जितशत्रु' राजा ने 'विजिया' राणी को, आतम जात तुमेव जी॥
श्री जिन अजित नमुं जयकारी ॥टेर।

२. दूजा देव घणेरा जग में, ते मुझ दाय न आवेजी।
तह मन तह चित्त हमने, तूं हीज अधिक सुहावेजी—श्री०

३. सेव्या देव घणां भव-भव में, तो पिण गरज न सारी जी।
अब के श्री जिनराज मिल्यो तूं, पूरण पर उपकारी जी—श्री०

४. त्रिभुवन में जस उज्ज्वल तेरो, फैल रह्यो जग जाने जी।
वंदनीक पूजनीक सकल को, आगम एम वखाणे जी—श्री०

५. तूं जग जीवन अन्तरजामी, प्राण आधार पियारो जी।
सब विधि लायक संत सहायक, भक्त-वत्सल पद धारोजी—श्री०

६. अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता, तो सम अवर न कोई जी।
वधे तेज सेवक को दिन-दिन, जेथ-तेथ जय होई जी—श्री०

७. अनन्त ज्ञान दर्शन सम्पत्ति ले, ईश भयो अविकारी जी।
अविचल भक्ति 'विनयचंद' कूं द्यो, तो जाणुं रीझ तुम्हारी जी—श्री०

३. श्री सम्भवनाथ

१. आज म्हारा संभव जिन जी का, हित-चितसूं गुण गास्यां।
मधुर-मधुर स्वर राग अलापी, गहरे शब्द गुंजास्यां राज—आज०

२. नृप 'जितारथ' 'सेन्या' राणी, ता सुत सेवक थास्यां।
नवधा भक्ति भाव सुं करने, प्रेम मगन हुई जास्यां राज—आज०

३. मन वच काय लाय प्रभु सेती, निसदिन सांस उसास्यां।
संभव जिनजी की मोहिनी मूरति, हिये निरन्तर ध्यास्यां राज—आज०

४. दीनदयाल दीन बन्धु के, खानाजाद कहास्यां।
तन-धन प्राण समर्पी प्रभु को, इण विध वेग रिझास्यां राज—आज०

५ अष्ट कर्म–दल अति जोरावर, ते जीत्यां सुख पास्यां।
जालिम मोह मार को जामें, साहस करी भगास्यां राज—आज०

६. ऊवड़ पंथ तजी दुर्गति को, शुभ गति पंथ समास्यां।
आगम अरथ तणे अनुसारे, अनुभव दशा जगास्यां राज—आज०

७. काम-क्रोध मद लोभ कपट तजि, निज गुण सुं लिव लास्यां।
'विनयचंद' संभव जिन तूठ्यां, आवागमन मिटास्यां राज—आज०

४. श्री अभिनन्दन

१. श्री अभिनन्दन दुःख निकन्दन, वन्दन पूजन योगजी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी—श्री०

२. 'संवर' राय 'सिधारथ' राणी, तेहनो आतमजात जी।
प्राण पियारो साहिब सांचो, तूं हिज मात ने तातजी—श्री०

३. कइयक सेव करे शंकर की, कइयक भजे मुरार जी।
गणपति सूर्य उमा कई सुमरे, हूं सुमरूं अविकारजी—श्री०

४. देव कृपा सुं पामें लक्ष्मी, सो इण भव को सुखजी।
तूं तूठां इण भव पर भव में, कदीय न व्यापै दुःखजी—श्री०

५. जदपि इन्द्र नरेन्द्र निवाजे, तदपि करत निहालजी।
तूं पूजनीक नरेन्द्र इन्द्र को, दीनदयाल कृपालजी—श्री०

६. जब लग आवागमन न छूटे, तब लग है अरदासजी।
सम्पति सहित ज्ञान समकित गुण, पाऊं दृढ़ विश्वासजी—श्री०

७. अधम उधारन विरुद तिहारो, जोवो इण संसार जी।
लाज 'विनयचन्द' की अब तो तैं, भवनिधि पार उतारियेजी—श्री०

५. श्री सुमतिनाथ

१. सुमति जिणेसर साहिबाजी, 'मेघरथ' नृप नो नन्द।
'सुमंगला' माता तणो जी, तनय सदा सुखकंद-प्रभु त्रिभुवन तिलोजी॥

२. सुमति सुमति दातार, महा महिमा निलोजी।
प्रणमूं वार हजार, प्रभू त्रिभुवन तिलोजी—प्रभु०

३. मधुकर नो मन मोहियोजी, मालती कुसुम सुवास।
त्यूं मुझ मन मोह्यो सही, जिन महिमा सुविमास—प्रभु०

४. ज्यूं पङ्कज सूरजमुखीजी, विकसे सूर्य प्रकाश।
त्यूं मुझ मनड़ो गहगह्योजी, सुनि जिन चरित हुल्लास—प्रभु०

५. पपइयो पिउ-पिउ करेजी, जान वर्षाऋतु मेह।
त्यूं मो मन निसदिन रहे, जिन सुमिरण सूं नेह—प्रभु०
६. काम-भोग नी लालसाजी, थिरता न धरे मन।
पिण तुम भजन प्रताप थी, दाझै दुर्मति वन—प्रभु०
७. भवनिधि पार उतारियेजी, भक्त-वच्छल भगवान्।
'विनयचन्द' की वीनती थें मानो कृपानिधान—प्रभु०

६. श्री पद्मप्रभु

पदम प्रभु ! पावन नाम तिहारो, पतित उद्धारन हारो ।।टेर।।
१. जदपि धीवर, भील, कसाई, अति पापिष्ठ जमारो।
तदपि जीव-हिंसा तज प्रभु भज, पावै भवनिधि पारो—पदम०
२. गौ ब्राह्मण प्रमदा बालक की, मोटी हत्या चारों।
तेहनो करणहार प्रभु भजने, होत हत्यासुं न्यारो—पदम०
३. वैश्या चुगल छिनाल जुवारी, चोर महा वटमारो।
जो इत्यादि भजे प्रभु तों ने, तो निवृत्ते संसारो—पदम०
४. पाप पराल को पुंज बन्यो अति, मानो मेरु अकारो।
ते तुझ नाम हुतासन सेती, सहजां प्रज्वलत सारो—पदम०
५. परम धरम को मरम महा रस, सो तुम नाम उच्चारो।
या सम मंत्र नहीं कोई दूजो, त्रिभुवन मोहनगारो—पदम०
६. तो सुमरण विन इण कलियुग में, अवर न कोई आधारो।
मैं वारी जाऊं तों सुमिरण पर, दिन-दिन प्रीत बधारो—पदम०
७. 'सुषमा' राणी को अंगजात तूं, 'श्रीवर' राय कुमारो।
'विनयचन्द' कहे नाथ निरंजन, जीवन प्राण हमारो—पदम०

७. श्री सुपार्श्वनाथ

१. 'प्रतिष्ठसेन' नरेश्वर को सुत, 'पृथ्वी' तुम महतारी।
सुगुण सनेही साहिब सांचो, सेवक ने सुखकारी—
श्री जिनराज सुपास, पूरो (नी) आस हमारी ।।टेर।।

२. धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक, मन वांछित सुख पूरो ।
वार–बार मुझ यही विनती, भवभव चिंता चूरो—श्रीजिन०

३. जगत् शिरोमणि भक्ति तिहारी, कल्पवृक्ष सम जाणूं ।
पूरण ब्रह्म प्रभु परमेश्वर, भव-भव तुम्हें पिछाणूं—श्रीजिन०

४. हूं सेवक तूं साहिब मेरो, पावन पुरुष विज्ञानी ।
जनम-जनम जित-तिथ जाऊं तो, पालज्यो प्रीत पुरानी—श्रीजिन०

५. तारण-तरण शरण-अशरण को, विरुद इसो तुम सोहे ।
तो सम दीनदयाल जगत में, इन्द्र नरेन्द्र न को है—श्रीजिन०

६. स्वयंभूरमण वड़ो समुद्रों में, शैल सुमेर विराजै ।
तूं ठाकुर त्रिभुवन में मोटो, भक्ति कियां दुःख भाजै—श्रीजिन०

७. अगम अगोचर तूं अविनाशी, अलख अखंड अरूपी ।
चाहत दरस 'विनयचंद' तेरो, सच्चिदानन्द स्वरूपी—श्रीजिन०

८. श्री चन्द्रप्रभु

जय जय जगत शिरोमणी, हूं सेवक ने तूं धणी ।
अब तोसूं गाढ़ी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी ।।टेर।।

१. मुझ महर करो, चन्दाप्रभु जग जीवन अन्तरजामी ।
भव दुःख हरो सुणिये अरज हमारी (ओ !) त्रिभुवन स्वामी—मुझ०

२. 'चन्द्रपुरी' नगरी हती, 'महासेन' नामा नरपति ।
राणी 'श्रीलखमा' सती, तसु नन्दन तूं चढ़ती रति—मुझ०

३. तूं सर्वज्ञ महाज्ञाता, आतम अनुभव को दाता ।
तूं तूठां लहिये साता, प्रभु धन्य जगत् में तुम ध्याता—मुझ०

४. शिव सुख प्रार्थना करसूं, उज्ज्वल ध्यान हिये धरसूं ।
रसना तुम महिमा करसूं, प्रभु इण विध भवसागर तिरसूं—मुझ०

५. चन्द्र चकोरन के मन में, गाज अवाज हुए वन में।
पिय अभिलाषा ज्यों त्रिय तनमें त्यों वसियो तूं मो चितवन में—मुझ०

६. जो सुनजर साहिब तेरी, तो मानो विनती मेरी।
काटो करम भरम वैरी, प्रभु पुनरपि नहीं परूं भव फेरी—मुझ०

७. आतम ज्ञान दशा जागी, प्रभु तुम सेती लिव लागी।
अन्य देव भ्रमणा भागी, प्रभु 'विनयचंद' तिहारो अनुरागी—मुझ०

९. श्री पुष्पदन्त (सुविधिनाथ)

१. काकंदी नगरी भली हो, श्री 'सुग्रीव' नृपाल।
'रामा' तस पटरायणी हो, तस सुत परम कृपाल—
श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो ।।टेर।।

२. त्यागी प्रभुता राज नी हो, लीनो संजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार—श्री०

३. अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन।
शुद्ध समकित चारित्र नो हो, परम क्षायिक गुण लीन—श्री०

४. ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अन्त।
ज्ञान दर्शन वल ये तिहुं हो, प्रगट्या अनन्तानन्त—श्री०

५. अव्यावाध सुख पामिया हो, वेदनीय करम खपाय।
अवगाहना अटल लही हो, आयु क्षय कर जिनराय—श्री०

६. नाम करम नो क्षय करी हो, अमूर्तिक कहाय।
अगुरु-लघु पणो अनुभव्यो हो, गोत्र करम मूकाय—श्री०

७, अष्ट गुणाकर ओलख्यो हो, ज्योति रूप भगवन्त।
'विनयचंद' के उर वसो हो, अहोनिशि प्रभु पुष्पदंत—श्री०

१०. श्री शीतलनाथ

१. 'श्रीदृढ़रथ' नृप तो पिता, 'नन्दा' थांरी मांय।
रोम-रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय ।।टेर।।

२. जय जय जिन त्रिभुवन धणी, करुणानिधि करतार।
सेव्यां सुरतरु जेहवा, वांछित सुख दातार—जय०

३. प्राण पियारो तूं प्रभु, पतिवरता पति जेम।
लगन निरंतर लग रही, दिन-दिन अधिको प्रेम—जय०

४. शीतल चंदन नी परे, जपतां निशदिन जाप।
विषय कषाय थी ऊपन्यो, मेटो भव-दुःख ताप—जय०

५. आर्त्त रौद्र परिणाम थी, उपजे चिन्ता अनेक।
ते दुःख कापो मानसिक, आपो अचल विवेक—जय०

६. रोगादिक क्षुधा – तृषा, शस्त्र – अस्त्र प्रहार।
सकल शरीरी दुःख हरो, दिलसु विरुद विचार—जय०

७. सुप्रसन्न होय शीतल प्रभु, तूं आशा विसराम।
'विनयचंद' कहे मो भणी, दीजे मुक्ति मुकाम—जय०

११. श्री श्रेयांसनाथ

१. चेतन जाण कल्याण करण को, आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण, मन चंचल थिर कर रे—
श्रेयांस जिनन्द सुमर रे ॥टेर॥

२. सांस उसांस विलास भजन को, दृढ़ विश्वास पकर रे।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच, सो सुमिरन जिनवर रे—श्रे०

३. कंदर्प क्रोध लोभ मद माया, ये सबही परिहर रे।
सम्यक्‌दृष्टि सहज सुख प्रगटे, ज्ञान दशा अनुसर रे—श्रे०

४. झूठ प्रपंच जीवन तन धन अरु, सजन सनेही घर रे।
छिन में छोड़ चले परभव को, बंध शुभाशुभ थर रे—श्रे०

५. मानस जनम पदारथ जा की, आशा करत अमर रे।
ते पूरब सुकृत कर पायो, धरम-मरम दिल धर रे—श्रे०

६. 'विश्वसेन' 'विस्ना' राणी को, नंदन तूं न बिसर रे ।
सहज मिटे अज्ञान अविद्या, मुक्ति पंथ पग धर रे—श्रे०

७. तूं अविकार विचार आतम गुण, भ्रम जंजाल न पर रे ।
पुद्‌गल चाह मिटाय 'विनयचंद', तूं जिन ते न अवर रे—श्रे०

१२. श्री वासुपूज्य

१. प्रणमूं वासुपूज्य-जिन नायक, सदा सहायक तूं मेरो ।
विषम वाट घाट भय थानक, परमाश्रय शरणो तेरो—प्र०

२. खल-दल प्रबल दुष्ट अति दारुण, जो चौ तरफ दियो घेरो ।
तो पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी, अरियन होय प्रगटे चेरो—प्र०

३. विकट पहाड़ उजाड़ बीच कोई, चोर कुपात्र करे हेरो ।
तिण विरियां करिये तो सुमिरन, कोई न छीन सके डेरो—प्र०

४. राजा बादशाह जो कोई कोपे, अति तकरार करे छेरो ।
तदपि तूं अनुकूल होय तो, छिन में छूट जाय सब केरो—प्र०

५. राक्षस भूत पिशाच डाकिनी, साकिनी भय नावे नेरो ।
दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे, प्रभु तुम नाम भज्यां गहरो—प्र०

६. विस्फोटक कुष्टादिक संकट, रोग असाध्य मिटे सगरो ।
विष प्यालो अमृत होय प्रगमे, जो विश्वास जिनन्द तेरो—प्र०

७. मात 'जया' 'वसु' नृप के नन्दन, तत्व जथारथ बुध प्रेरो ।
वे कर जोड़ि 'विनयचन्द' विनवे, वेग मिटे मुझ भव फेरो—प्र०

१३. श्री विमलनाथ

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुद्धि निर्मल हो जाय रे ।।

१ जीवा ! विषय विकार विसार ने, तूं मोहनीय कर्म खपाय रे ।
जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ।।टेर।।

२. सूक्ष्म साधारण पणे, प्रत्येक वनस्पति मांय रे।
जीवा! छेदन-भेदन तें सह्या, मर-मर उपज्यो तिण काय रे—जी०

३. काल अनन्ती तिहां भम्यो, तेहना दुःख आगमथी संभाल रे।
जीवा! पृथ्वी अप तेउ वायु में, रह्यो असंख्यासंख्य काल रे—जी०

४. एकेन्द्री सूं बेइन्द्री थयो, पुण्याई अनन्ती वृद्धि रे।
जीवा! सन्नी पंचेन्द्री लगे पुण्य बध्या, अनन्तानन्त प्रसिद्ध रे—जी०

५. देव नरक तिरयंच में, अथवा मानव भव वीच रे।
जीवा! दीनपणे दुःख भोगव्या, इण चारों ही गति वीच रे—जी०

६. अब के उत्तम कुल मिल्यो, भेट्या उत्तम गुरु साध रे।
जीवा! सुण जिन वचन सनेह से, समकित व्रत शुद्ध आराध रे—जी०

७. पृथ्वीपति 'कृतभानु' को, 'सामा' राणी को कुमार रे।
जीवा! 'विनयचंद' कहे ते प्रभु, सिर सेहरो हिवड़ा रो हार रे—जी०

१४. श्री अनन्तनाथ

१. अनन्त जिनेश्वर नित नमूं, अद्‌भुत ज्योंति अलेख।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख—अ०

२. सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद्‌रूप।
पवन शब्द आकाशथी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप—अ०

३. सकल पदारथ चिन्तवूं, जे-जे सूक्ष्म होय।
तिणथी तूं सूक्षम महा, तो सम अवरन कोय—अ०

४. कवि पण्डित कही-कही थके, आगम अर्थ विचार।
तो पण तुम अनुभव तिको, न सके रसना उचार—अ०

५. आप भणे मुख सरस्वती, देवी आपो आप।
कही न सके प्रभु तुम सत्ता, अलख अजप्पा जाप—अ०

६. मन बुध वाणी तो विषे, पहुंचे नहीं लिगार।
साक्षी लोकालोकनी, निर्विकल्प निर्विकार—अ०

७. मा 'सुजसा' 'सिंहरथ' पिता, तस सुत 'अनन्त' जिनन्द।
'विनयचन्द' अब ओलख्यो, साहिब सहजानन्द—अ०

१५. श्री धर्मनाथ

१. धरम जिनेश्वर मुझ हिवड़े वसो, प्यारो प्राण समान।
कबहूं न विसरू हो चितारू नहीं, सदा अखंडित ध्यान—ध०

२. ज्यूं पणिहारी कुम्भ न विसरे, नटवो नृत्य निदान।
पलक न विसरे हो पदमणी पियुभणी, चकवी न विसरे भान—ध०

३. ज्यूं लोभी मन धन की लालसा, भोगी के मन भोग।
रोगी के मन माने औषधि, जोगी के मन जोग—ध०

४. इणी परे लागी पूरण प्रीतड़ी, जाव जीव परियन्त।
भव-भव चाहूं हो न पड़े आंतरो, भव भंजन भगवन्त—ध०

५, काम-क्रोध मद मत्सर लोभथी, कपटी कुटिल कठोर।
इत्यादिक अवगुण कर हूं भर्‌यो, उदय करम के जोर—ध०

६. तेज प्रताप तुम्हारो प्रगटे, मुझ हिवड़ा में आय।
तो हूं आतम निज गुण संभालने, अनन्त बली कहिवाय—ध०

७. 'भानु' नृप 'सुव्रता' जननी तणो, अंगजात अभिराम।
'विनयचन्द' ने वल्लभ तूं प्रभु, शुद्ध चेतन गुणधाम—ध०

१६. श्री शान्तिनाथ

१. 'विश्वसेन' नृप 'अचला' पटराणी, तस सुत कुल सिणगार हो सौभागी।
जनमत शांति करी निज देश में, मिरगी मार निवार हो सौभागी–शां०

२. शांति जिनेश्वर साहिवा सोलवां, शांतिदायक तुम नाम हो सौभागी।
तन मन वचन सुध करि ध्यावतां, पूरे सघली आस हो सौभागी–शां०

३. विघन न व्यापे तुम सुमिरण कियां, नासे दारिद्र दुःख हो सौभागी।
अष्ट सिद्धि नव निधि पग-पग मिले, प्रगटे सघला सुख हो सौभागी–शां०

४. जेहने सहायक शांति जिनन्द तूं, तेहने कमीय न काय हो सौभागी।
जे जे कारज मन में तेवड़े, ते–ते सफला थाय हो सौभागी–शां०

५. दूर दिसावर देश प्रदेश में, भटके भोला लोग हो सौभागी।
सानिधकारी सुमिरण आपरो, सहज मिटे सहू शोक हो सौभागी–शां०

६. आगम–साख सुणी छे एहवी, जे जिण सेवक होय हो सौभागी।
तेहनी आशा पूरे देवता, चौसठ इन्द्रादिक सोय हो सौभागी–शां०

७. भव–भव अन्तरजामी तुम प्रभु, हमने छे आधार हो सौभागी।
वेकर जोड़ 'विनयचन्द' विनवे, आपो सुख श्रीकार हो सौभागी–शां०

१७. श्री कुन्थुनाथ

१. कुन्थु जिनराज तूं ऐसो, नहीं कोई देव तौं जैसो।
त्रिलोकी नाथ तूं कहिये, हमारी बांह दृढ़ गहिये—कुन्थु०

२. भवोदधि डूबतो तारो, कृपानिधि आसरो थांरो।
भरोसो आपको भारी, विचारो विरुद उपकारी—कुन्थु०

३. उमाहो मिलन को तौंसे, न राखो आंतरो मौंसे।
जैसी सिद्ध अवस्था तेरी, वैसी चैतन्यता मेरी—कुन्थु०

४. करम-भ्रम जाल को दपट्यो, विषय सुख ममत्व में लपट्यो।
भ्रम्यो हूं चहुं गती मांहीं, उदयकर्म भरम की छांही—कुन्थु०

५. उदय को जोर है जौंलों, न छूटे विषय सुख तौंलों।
कृपा गुरुदेव की पाई, निजातम भावना भाई—कुन्थु०

६. अजब अनुभूति उर जागी, सुरति निज रूप में लागी।
तुम्हीं हम ऐक्यता जाणूं,—द्वैत भ्रम कल्पना मानूं—कुन्थु०

७. 'श्रीदेवी' 'सूर' नृप नन्दा, अहो! सर्वज्ञ सुखकन्दा।
'विनयचन्द' लीन तव गुण में, न व्यापे अविद्या मन में—कुन्थु०

१८. श्री अरहनाथ

१. अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी, साहिब सीधो—

२. चेतन भज तूं अरहनाथ ने, ते प्रभु त्रिभुवन राय।
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेहनो पुत्र कहाय—सा०

३. क्रोड़ जतन करतां नहीं पामें, एहवी मोटी माम।
ते जिन भक्ति करी ने लहिये, मुक्ति अमोलक ठाम—सा०

४. समकित सहित कियां जिन भगती, ज्ञान दर्शन चारित्र।
तप वीरज उपयोग तिहारो, प्रगटे परम पवित्र—सा०

५. स्व उपयोग सरूप चिदानन्द, जिनवर ने तूं एक।
द्वैत अविद्या विभ्रम मेटो, बाधे शुद्ध विवेक—सा०

६. अलख अरूप अखंडित अविचल, अगम अगोचर आप।
निर्विकल्प निकलंक निरंजन, अद्‌भुत ज्योति अमाप—सा०

७. ओलख अनुभव अमृत याको, प्रेम सहित रस पीजे।
हूं तूं छोड़ 'विनयचन्द' अन्तर, आतमराम रमीजे—सा०

१९. श्री मल्लिनाथ

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी,
'कुम्भ' पिता 'परभावति' मइया, तिनकी कुंवारी ।।टेर।।

१. मा नी कूंख कन्दरा मांही उपन्या अवतारी।
मालती कुसुम–मालनी वांछा, जननी उर धारी—मल्लि०

२. तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो, त्रिभुवन प्रियकारी।
अद्‌भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी, वेद धर्‌यो नारी—मल्लि०

३. परणन काज जान सज आए, भूपति छः भारी।
मिथिला पुरि घेरी चौतरफा, सेना विस्तारी—मल्लि०

४. राजा 'कुम्भ' प्रकाशी तुम पे, वीती विधि सारी।
छहुं नृप जान सजी तो परणन, आया अहंकारी—मल्लि०

५. श्रीमुख वीरज दीधी पिता ने, राखो हुशियारी।
पुतली एक रची निज आकृति, थोथी ढकवारी—मल्लि०

६. भोजन सरस भरी सा पुतली, श्री जिन सिणगारी।
भूपति छः बुलवाया निज मन्दिर, विच वहु दिन टारी—मल्लि०

७. पुतली देख छहुं नृप मोह्या, अवसर विचारी।
ढांक उघाड़ दियो पुतली को, भभक्यो अन्न भारी—मल्लि०

८. दुसह दुर्गन्ध सही ना जावे, ऊठ्या नृप हारी।
तब उपदेश दियो श्रीमुख से, मोह दशा टारी—मल्लि०

९. महा असार उदारिक देही, पुतली इव प्यारी।
संग कियां भटके भव-दुख में, नारी नरक – द्वारी—मल्लि०

०. भूपति छः प्रतिवोध मुनि हो, सिद्धगति सम्भारी।
'विनयचन्द' चाहत भव-भव में, भक्ति प्रभु थारी—मल्लि०

२०. श्री मुनिसुव्रतस्वामी

१. श्री मुनिसुव्रत साहिवा, दीन दयाल देवां तणां देव के।
तारण तरण प्रभु मो भणी, उज्ज्वल चित्त सुमरू नितमेव के—श्री०

२. हूं अपराधी अनादि को, जनम-जनम गुनाह किया भरपूर के।
लूटिया प्राण छः कायना, सेविया पाप अठारह क्रूर के—श्री०

३. पूरव अशुभ कर्त्तव्यता, तेहने प्रभु तुम न विचार के।
अधम उधारण विरुद छे, सरण आयो अब कीजिये सार के—श्री०

४. किंचित पुण्य परभावथी, इण भव ओलख्यो श्रीजिन धर्म के।
निवर्तूं नरक निगोदथी, एहवो अनुग्रह करो परब्रह्म के—श्री०

५. साधुपणो नहीं संग्रह्यो, श्रावक व्रत न किया अंगीकार के।
आदर्या तो न आराविया, तेहथी रुलियो हूं अनन्त संसार के—श्री०

६. अव समकित व्रत आदर्यो, तेहने आराधि हूं उतरूं भव पार के।
जनम जीतव्य सफलो हुवे, इण पर विनवूं वार हजार के—श्री०

७. 'सुमति' नराधिप तुम पिता, धन-धन श्री 'पद्मावती' मायके।
तस सुत त्रिभुवन तिलक तूं, वंदत 'विनयचंद' सीस नमाय के—श्री०

२१. श्री नमिनाथ

१. 'विजयसेन' नृप 'विप्राराणी', नमिनाथ जिन जायो।
चौंसठ इन्द्र कियो मिल उत्सव, सुर नर आनन्द पायो रे—
सुज्ञानी जीवा भजले जिन इकवीसवां ।।टेर।।

२. भजन कियां भव-भवना दुष्कृत, दुःख दुर्भाग्य मिट जावे।
काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा, दुर्मति निकट न आवे रे—सु०

३. जीवादिक नव तत्व हिये धर, हेय ज्ञेय समझीजे।
तीजो उपादेय ओलख ने, समकित निरमल कीजे रे—सु०

४. जीव अजीव बंध ये तीनों, ज्ञेय जथारथ जानो।
पुण्य पाप आस्त्रव परिहरिये, हेय पदारथ मानो रे—सु०

५. संवर मोक्ष निर्जरा निज गुण, उपादेय आदरिये।
कारण कारज जाण भलि विध, भिन-भिन निरणो करिये रे—सु०

६. कारण ज्ञान स्वरूप जीव को, कारज कियो पसारो।
दोनूं को साखी शुद्ध अनुभव, आपो खोज तिहारो रे—सु०

७. तूं सो प्रभु प्रभु सो तूं है, द्वैत कल्पना मेटो।
सच्चिद् आनन्दरूप 'विनयचन्द', परमातम पद भेंटो रे—सु०

४. सर्प अन्धारे रासड़ी रे, रूपो सीप मझार।
मृगतृष्णा अंबू मृषा रे, त्यूं आतम में संसार—जीवरे०

५. अग्नि विषे ज्यूं मणि नहीं रे, मणि में अग्नि न होय।
सपने की सम्पत्ति नहीं ज्यूं, त्यूं आतम में जग जोय—जीवरे०

६. वांझ पुत्र जनमें नहीं रे, सींग शशै सिर नांय।
कुसुम न लागे व्योम में रे, त्यूं, जग आतम मांय—जीवरे०

७. अमर अजोनी आतमा रे, है निश्चय तिहुं काल।
'विनयचन्द' अनुभव थकी रे, तूं निज रूप सम्हाल—जीवरे०

२४. श्री महावीर

१. श्री महावीर नमो वरनाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी।
धन-धन जनक 'सिद्धारथ' राजा, धन 'त्रिशलादे' मात रे प्राणी॥

२. ज्यां सुत जायो गोद खिलायो, 'वर्धमान' विख्यात रे प्राणी।
प्रवचन सार विचार हिया में, कीजे अरथ प्रमाण रे प्राणी॥

३. सूत्र विनय आचार तपस्या, चार प्रकार समाधि रे प्राणी।
ते करिये भवसागर तरिये, आतम भाव अराधि रे प्राणी॥

४. ज्यों कंचन तिहुं काल कहीजे, भूषण नाम अनेक रे प्राणी।
त्यों जगजीव चराचर जोनि, है चेतन गुण एक रे प्राणी॥

५. अपणो आप विषै थिर आतम, सोहं हंस कहाय रे प्राणी।
केवल ब्रह्म पदारथ परिचय, पुद्गल भरम मिटाय रे प्राणी॥

६. शब्द रूप रस गंध न जामें, न सपरस तप छांह रे प्राणी।
तिमिर उद्योत प्रभा कछु नाहीं, आतम अनुभव मांहि रे प्राणी॥

७. सुख दुःख जीवन मरण अवस्था, ए दस प्राण संगात रे प्राणी।
इनथी भिन्न 'विनयचंद' रहिये, ज्यों जल में जलजात रे प्राणी॥

कलश

चौवीस तीरथनाथ कीरति, गावतां मन गह-गहे।
कुम्भट गोकुलचन्द - नन्दन, 'विनयचन्द' इण पर कहे॥
उपदेश पूज्य हमीर मुनि को, तत्त्व निज उर में धरी।
उगणीश-सौ-छः के छमच्छर, महास्तुति यह पूरण करी॥

(२०)

१. देखो रे आदेश्वर बाबा, कैसा ध्यान लगाया है ॥टेर॥
नाभिराय के पुत्र कहीजे, मां मरुदेवी जाया है—देखो०
२. कर ऊपर कर अधिक विराजे, आसन अचल जमाया है।
केवल ज्ञान उपाय जिनेश्वर, शिव-रमणी को ध्याया है—देखो०
३. सुर नर जिनकी भक्ति करत हैं, जिनवर सूं लिव लाया है।
सेवा कियां मिले सुख संपत, सब जीवन सुख पाया है—देखो०
४. देवी देव मिले बहुतेरे, भवि-जन मंगल गाया है।
तीन लोक में महिमा प्रभु की, 'चंद्रकुशल' गुण गाया है—देखो०
५. देखो रे आदेश्वर बाबा, कैसा ध्यान लगाया है।
कैसा ध्यान लगाया रे बाबा, कैसा मन समझाया है—देखो०

(२१)

बोल बोल आदेश्वर व्हाला।
कांई थारी मरजी रे, मां सूं मूंडे बोल ॥टेर॥
१. मां मरुदेवी बाट जोवती, इतरे वधाई आई रे।
आज ऋषभजी उतरिया बाग में, सुन हरसाई रे—मांसूं०
२. न्हाय धोयने गज असवारी, करी मरुदेवी माता रे।
जाय बाग में नन्दन निरख्यो, पाई साता रे—मांसूं०

३. राज छोड़ने निकल्या ऋषभजी, आ लीला अद्भूती रे।
चमर छत्र अरु सिंहासन, मोहनी मूरती रे—मांसू०

४. दिन भर बैठी बाट जोवती, कद मारो ऋषभो आवे रे।
कहती भरत ने आदिनाथ की, खबरां लादे रे—मांसू०

५. किस्या देश में गयो वालेश्वर, तुझ विन वनिता सूनी रे।
वात कहो दिल खोल लालजी, क्यूं वणगा थे मुनी रे—मांसू०

६. रिया मजा में है सुखसाता, खूब कर्‌या दिल चाया रे।
अब तो बोल आदेश्वर म्हांसूं, कलपे काया रे—मांसू०

७. खैर हुई सो हो गई वाला, वात भली नहीं कीनी रे।
गया पछै कागद नहीं दीनूं, म्हारी खवर न लीनी रे—मांसू०

८. ओलम्बा मैं देऊं कठा तक, पाछो क्यों नहीं बोले रे।
दुःख जननी का देख आदेश्वर, हिवड़ो डोले रे—मांसू०

९. अनित्य भावना भाई माता, निज आतम ने तारी रे।
केवल पाम्या मोक्ष सिधाया ज्यांने वन्दना मारी रे—मांसू०

१०. मुगति रा दरवाजा खोल्या, मोरा देवी माता रे।
काल असंख्या रह्या उघाड़ा, जम्बू जड़ गया ताला रे—मांसू०

११. साल वहत्तर तीरथ ओसियां, 'घेवर' प्रभु गुण गाया रे।
सुरत मोहनी प्रथम जिनन्द की प्रणमुं पाया रे—मांसू०

(२२)

तूं ही तूं ही प्रभु मेरा मन मांही वसियो।
मन मांही वसियो, दिल मांही वसियो ॥ टेर ॥

१. ऊठत बैठत सोवत जागत,
नाम तिहारो उर विच वसियो—तूं ही०

२. तुम सम दूजो देव न दीसे,
केवल ज्ञान कला गुण रसियो—तूं ही०

३. ध्यान दिलूं दी भक्ति भाव सूं,
तुम पद सेवत पातक नसियो—तूं ही०

४. पदम कमल सम गुण मकरंद रस,
मेरो मन मधु पीवण तरसियो—तूं ही०

५. सुविधि नाथ जिन सुध बुध बगसो,
"सुजान" तुम गुण प्रेम हुलसियो—तूं ही०

(२३)

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति, सब मिल शान्ति कहो।

१. विश्वसेन अचिरा के नन्दन, सुमिरन है सब दुःख निकन्दन।
अहोरात्रि वन्दन हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

२. भीतर शान्ति बाहिर शान्ति, तुझमें शान्ति मुझमें शान्ति।
सब में शान्ति बसाओ, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

३. विषय कषाय को दूर निवारो, काम क्रोध से करो किनारो।
शान्ति साधना यों हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

४. शान्ति नाम जो जपते भाई, मन विशुद्ध हिय धीरज लाई।
अतुल शान्ति उससे हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

५. प्रातः समय जो धर्म स्थान में, शान्ति पाठ करते मृदु स्वर में।
उनको दुःख नहीं हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

६. शान्ति प्रभु सम समदर्शी हो, करें विश्व हित जो शक्ति हो।
'गज मुनि' सदा विजय हो, सब मिल शान्ति कहो—ॐ

(२४)

१. तूं धन तूं धन तूं धन तूं धन, शान्ति जिनेश्वर स्वामी ।
मिरगी मार निवार कियो प्रभु, सर्व भणी सुखकामी ।।

२. अवतरिया अचला दे उदरे, माता साता पामी ।
शान्ति शान्ति जगत वरताई, सर्व कहे सिरनामी—तूं०

३. तुम परसाद जगत सुख पायो, भूले मूढ़ हरामी ।
कंचन डार काँच चित्त देवे, बांकी बुद्धि में खामी—तूं०

४. अलख निरंजन मुनिमनरंजन, भय - भंजन विसरामी ।
शिव-दायक लायक गुण-गायक, वायक है शिव–गामी—तूं०

५. "रतनचन्द" प्रभु कछुअ न मांगे, सुन तूं अन्तरजामी ।
तुम रहवन की ठौर बता दो, तो हूं सहु भर पामी—तूं०

(२५)

१. प्रातः ऊठ श्री शान्ति जिनन्द को, सुमिरण कीजे घड़ी घड़ी ।
संकट कोटि कटे भव–संचित, जो ध्यावे मन भाव धरी ।।टेर।।

२. जनमत पाण जगत दुःख टलियो, गलियो रोग असाध्य मरी ।
घट घट अन्तर आनन्द प्रगट्यो, हुलस्यो हिवड़ो हरष भरी—प्रातः०

३. आपद व्यंतर पिशुन भय भाजे, जैसे देखत मिरग हरी ।
एकण चित्त शुद्ध मन ध्यातां, प्रकटै परिचय परम सिरी—प्रातः०

४. गये विलाय भरम के बादल, परमारथ-पद-पवन करी ।
अवर देव एरंड कुण रोपै, जो निज मंदिर केल फली—प्रातः०

५. प्रभु तुम नाम जग्यो घट अन्तर, तो शुं करिए कर्म अरी ?
'रतनचन्द' शीतलता व्यापी, पातक जाय कषाय टरी—प्रातः०

(२६)

साता कीजोजी, श्री शान्तिनाथ प्रभु ।
शिव-सुख दीजोजी, साता कीजोजी ।।टेर।।

१. शान्तिनाथ है नाम आपको, सब ने साताकारीजी ।
तीन भुवन में चावा प्रभुजी, मृगी निवारीजी—साता०

२. आप सरीखा देव जगत में, और नजर नहीं आवेजी ।
त्यागी ने वीतरागी मोटा, मुझ मन भावेजी—साता०

३. शान्तिनाथ मन मांही जपतां, चाहे सो फल पावेजी ।
ताव-तेजरो, दुःख-दालिदर, सब मिट जावेजी—साता०

४. विश्वसेन राजाजी के नन्दन, अचलादेवी जायाजी ।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, घणा सुहायाजी—साता०

(२७)

नेमजी की जान बणी भारी, देखण को आये नर नारी ।।टेर।।

१. हींसता घोड़ा रथ हाथी, मनुष्य की गिणती नहीं आती ।
ऊंट पे ध्वजा जो फर्राती, धमक से धरती थर्राती ।।
समुद्र विजयजी का लाडला, नेम कुंवरजी नाम ।
राजुल दे को आये परणवा, उग्रसेन घर धाम ।।
प्रसन्न भई नगरी सब सारी—नेमजी०

२. कसुंवल वागा अति भारी, कानन कुंडल की छवि न्यारी ।
किलंगी तुर्रा सुखकारी, माल मोतियन की गल डारी ।।
काने कुण्डल झिगमिगे, शीश मुकुट सुखकार ।
कोटि भानु की वनी ओपमा, शोभा अधिक अपार ।।
बाज रया बाजा टक सारी—नेमजी०

३. छूट रही हुक्का सरणाई, ब्याह में आये बड़े भाई।
झरोखे राजुल दे आई, जान को देखर सुख पाई ॥
उग्रसेनजी देख के, मन में कियो विचार।
बहुत जीव को करी एकठा, बाड़ो भर्यो तिवार ॥
करी जब भोजन की त्यारी–नेमजी०

४. नेमजी तोरण पर आये, पशु सब मिलकर कुर्राये।
नेमजी वचन यूं उच्चारे, पशु ये कोहे को लाये ॥
इणको भोजन होवसी, जान वास्ते त्यार।
एह वचन सुण नेमकी, थरथर कंपी काय ॥
भाव से चढ़ गये गिरनारी–नेमजी०

५. पीछे से राजुलदे आई, हाथ तव पकड्यो छिन मांई।
कहां तूं जावे मोरी जाई, और वर हेरुं सुखदायी ॥
मेरे तो वर एक ही, हो गये नेम कुमार।
और भुवन में वर नहीं चाहे, करो क्रोड़ उपचार ॥
झूरती छोड़ी मां प्यारी–नेमजी०

६. सहेल्यां सब ही समझावे, दाय नहीं राजुल के आवे।
जगत सब झूठो दर्शावे, मेरे मन नेमकुंवर भावे ॥
तोड्या कांकण डोरड़ा, तोड्यो नवसर हार।
काजल टीकी पान सुपारी, त्याग्यो सब सिणगार ॥
करी अब संयम की त्यारी–नेमजी०

७. तज्या सब सोले सिणगारा, आभूषण रत्न जड़ित सारा।
लगे मोय सब ही सुख खारा, छोड़ कर चाली परिवारा ॥
मात पिता परिवार को, तजतां न लागी वार।
रहनेमी समझाय के, जाय चढ़ी गिरनार ॥
दीक्षा फिर राजुल ने धारी–नेमजी०

८. दया दिल पशुअन की आई, त्याग जब कीनो छिन मांही।
नेम जिन गिरनारे जाई, पशु के बन्धन छुड़वाई।।
नेम राजुल गिरनार पे, कीनो अविचल ध्यान।
'नवलमल' यह करी लावणी, ऊपजो केवल ज्ञान।।
जिनों की किरिया शुद्ध सारी—नेमजी०

(२८)

१. आपण घर बैठां लील करो, निज पुत्र कलत्र सु नेह धरो।
तुम देश देशान्तर कांई दौड़ो, नित पार्श्व जपो श्री जिन रूड़ो।।
२. मन वांछित सघला काज सरे, सिर ऊपर चामर छत्र धरे।
कलमल आगल चाले घोड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
३. भूत प्रेत पिशाच बली, सायण ने डायण जाय टली।
छल छिद्र न कोई लागे जूड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
४. एकान्तर ताव सीयो दाह, औषधि विन जाय क्षण मांह।
नवि दूखे माथु पग गोड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
५. कंठमाल गल गुंबड सघला, तस उदर रोग टलें सबला।
पीड़ा न करे फिनगल फोड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
६. जागतो तीर्थङ्कर पार्श्व वहु, इम जाणे सघलो जगत सहु।
तत्क्षण अशुभ कर्म तोड़ो, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।
७. पास वाराणसी पुरी नगरी, तिहां उदयो जिनवर उदय करी।
'समयसुन्दर' कहे कर जोड़ी, नित पास जपो श्री जिन रूड़ो।।

(२९)

[दोहा]

१. कल्पवेल चिन्तामणि, काम—धेनु गुण—खान।
अलख अगोचर अगम गति, चिदानन्द भगवान।।

२. परम ज्योति परमात्मा, निराकार अविकार ।
निर्भय रूप ज्योति स्वरूप, पूरण ब्रह्म अपार ॥

३. अविनाशी साहिब धणी, चिन्तामणि श्रीपास ।
अर्ज करूँ कर जोड़ के, पूरो वंछित आस ॥

४. मन-चिन्तित आशा फले, सकल सिद्ध हों काम ।
चिन्तामणि को जाप जप, चिन्ता हरे यह नाम ॥

५, तुम सम मेरो को नहीं, चिन्तामणि भगवान ।
चेतन की यह वीनती, दीजे अनुभव ज्ञान ॥

[चौपाई]

६. प्राणत देवलोक से आए, जन्म वाराणसी नगरी पाए ।
अश्वसेन कुल-मंडन स्वामी, तिहुं जग के प्रभु अंतरजामी ॥

७. वामादेवी माता के जाये, लंछन नागफणी मणि पाये ।
शुभ काया नव हाथ वखाणो, नील वर्ण तन निर्मल जाणो ॥

८. मानव यक्ष सेवें प्रभु-पाय, पद्मावती देवी सुख-दाय ।
इन्द्र-चन्द्र पारस-गुण गावें कल्पवृक्ष चिन्तामणि पावें ॥

९. नित सुमरो चिन्तामणि स्वामी, आशा पूरे अन्तरयामी ।
धन-धन पारस पुरिसादाणी, तुम सम जग में कोई नहिं नाणी ॥

१०. तुमरो नाम सदा सुखकारी, सुख उपजै दुःख जाय विसारी ।
चेतन को मन तुमरे पास, मन-वंछित पूरो प्रभु आस ॥

[दोहा]

११. ॐ भगवन्त चिन्तामणि, पार्श्व प्रभु जिनराय ।
नमो-नमो तुम नाम से, रोग-शोक मिट जाय ॥

१२. वात पित्त दूरे टलें, कफ नहीं आवे पास ।
चिन्तामणि के नाम से, मिटें श्वास और खांस ॥

१३. प्रथम दूसरो तीसरो, ताव चौथियो जाय।
शूल बहत्तर दूर हों दादर खाज न थाय ॥

१४. विस्फोटक गडगुंबड़ा, कोढ़ अठारह दूर।
नेत्र–रोग सब परिहरें, कंठ-माल चकचूर ॥

१५. चिन्तामणि के जाप से, रोग शोक मिट जाय।
चेतन पारस नाम को, सुमरो मन चित लाय ॥

[चौपाई]

१६. मन शुद्धे सुमरो भगवान, भयभंजन चिन्तामणि-ध्यान।
भूत-प्रेत-भय जावें दूर, जाप जपे सुख-संपत्ति पूर ॥

१७. डाकण साकण व्यंतर देव, भय नहीं लागे पारस–सेव।
जलचर थलचर उरपर जीव, इनको भय नहिं सुमरो पीव ॥

१८. वाघ सिंह को भय नहीं होय, सर्प गोह आवे नहिं कोय।
वाट घाट में रक्षा करे, चिन्तामणि चिन्ता सब हरे ॥

१९. टोणा टामण जादू करे, तुमरो नाम लियां सब डरे।
ठग फांसीगर तस्कर होय, द्वेषी दुश्मन नावे कोय ॥

२०. भय सब भागें तुमरे नाम, मन-वांछित पूरो सब काम।
भय-निवारण पूरे आस, चेतन जप चिन्तामणि पास ॥

[दोहा]

२१. चिन्तामणि के नाम से, सकल सिद्ध हों काम।
राज-ऋद्धि रमणी मिले, सुख संपत्ति वहु दाम ॥

२२. हय गय रथ पायक मिलें, लक्ष्मी को नहिं पार।
पुत्र कलत्र मंगल सदा, पावें शिव दरवार ॥

२३. चेतन चिन्ता–हरण को, जाप जपो तिहूं काल।
कर आंबिल षट् मास को, उपजे मंगल माल ॥

२४. पारस–नाम प्रभाव से, बाढ़े बल बहु ज्ञान ।
मनवांछित सुख ऊपजे, नित सुमरो भगवान ॥

२५. संवत् अठारा ऊपरे, साढ़–त्रीस परिमाण ।
पौष शुक्ल दिन पंचमी, बार शनिश्चर जाण ॥

२६. पढ़े गुणे जो भाव से, सुणे सदा चित लाय ।
चेतन संपत्ति बहु मिले, सुमरो मन वच काय ॥

(३०)

जै श्री पार्श्व प्रभो, स्वामी जै श्री पार्श्व प्रभो ।
आशा पूरण करिये, हरिये कष्ट विभो ॥
ओऽम् जय श्री पार्श्व प्रभो ॥टेर॥

१. पारस पुरुषा दानी, शरण पड़ा तेरी ।
धरणेन्दर पद्मावती, सहाय करो मेरी–ओऽम्०

२. प्रतिदिन तुम्हें मनाऊं, वांछित फल पाऊं ।
पाकर पारस स्वामी, मैं बलि–बलि जाऊं–ओऽम्०

३. मम गृह कमला आवे, सुख में दिन जावे ।
दास तुम्हारा निशदिन, जय कीरति पावे–ओऽम्०

४. सब विध अब तो मुझ पर, दया करो स्वामी ।
पाहि त्राहि माम्, दीनं हे अन्तरयामी–ओऽम्०

५. कामधेनु सुर तरु से, मुझको फलदाता ।
चिन्तामणि सम तुमसे, सब कुछ मैं पाता–ओऽम्०

६. परम दिव्य शिव संपत्ति, 'केवल' को दीजै ।
पुत्र समझ कर अपना, जल्दी सुध लीजे–ओऽम्०

(३१)

१. तुम से लागी लगन ले लो अपनी शरण,
पारस प्यारा, मेटो मेटोजी संकट हमारा !

२. निश दिन तुमको जपूं पर से नेहा तजूं,
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा–मेटो०

३. अश्वसेनजी के राजदुलारे, वामादेवी के सुत प्राण प्यारे !
सब से नेहा तोड़ा, जग से मुंह मोड़ा, संयम धारा–मेटो०

४. इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये।
आशा पूरो सदा, दुःख नहीं पावे कदा सेवक थारा–मेटो०

५. जग के दुःख की परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की चाह नहीं है।
मेटो जन्म मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा–मेटो०

६. लाखों वार तुम्हें शीप नमाऊं, गजके नाथ तुम्हें कैसे पाऊं।
'पंकज' व्याकुल भया, दरशन बिन यह जिया लागे खारा–मेटो०

(३२)

१. पारसनाथ सहायी जाके, कमी रहे नहीं कांई।
वन में मंगल रण में रक्षा, अग्नि होत शितलाई—पा०

२. जहां-जहां जावे तहां-तहां आदर, आनन्द रंग बधाई।
कहा करे द्वेपी जन कोऊ, बाल न बांका थाई—पा०

३. भजन करे सो नव-निधि पावे, विप अमृत हो जाई।
'रूपचन्द्र' प्रभु के गुण गावे, जन्म-जन्म सुखदाई—पा०

(३३)

वामाजी के नंदा मानो, सोहे पूनम चन्दाजी ।। टेर ।।

१. तीन ज्ञान ले गर्भ में आये प्रभु।
मात पिता मन भया है आनन्दाजी–वामाजी०

२. पोष कृष्ण दसमी जन्म भयो जब।
नृत्य गीत करै उरवशी इन्दाजी–वामाजी०

३. मान भक्ति वर सुजंग कृपा कर।
देव परमेष्ठी ने किया है वरणिन्दाजी—वामाजी०

४. जगत मान भ्रम ख्याल समस्त तज।
कर्म काट सिद्ध थया है जिनंदाजी—वामाजी०

५. गुण अनन्त नाथ पारस के।
गावत पार न पावे विनयचन्दाजी॥
वन्दे परम आनन्दा विनयचन्दाजी—वामाजी०

(३४)

१. ॐ जय महावीर प्रभो! स्वामी जय महावीर प्रभो!
जगनायक सुखदायक, अति गम्भीर प्रभो!

२. कुण्डलपुर में जन्मे, त्रिशला के जाए! माता त्रिशला के—
पिता सिद्धार्थ राजा, सुर नर हर्षाए, ॐ जय०

३. दीनानाथ दयानिधि, हैं मंगलकारी, स्वामी हैं मंगल—
जगहित संयम धारा, प्रभु पर उपकारी, ॐ जय०

४. पापाचार मिटाया, सत्पथ दिखलाया, स्वामी सत्पथ—
दयाधर्म का झण्डा, जग में लहराया, ॐ जय०

५. अर्जुनमाली गौतम, श्री चन्दन बाला, स्वामी श्री चन्दन—
पार जगत से बेड़ा, इनका कर डाला, ॐ जय०

६. पावन नाम तुम्हारा, जगतारणहारा, स्वामी जगतारण—
निशदिन जो नर ध्यावे, कष्ट मिटे सारा, ॐ जय०

७. करुणा सागर! तेरी, महिमा है न्यारी, स्वामी महिमा—
'ज्ञानमुनि' गुण गावे, चरणन बलिहारी, ॐ जय०

(३५)

१. जय अघनाशन, शान्ति सिंहासन, द्वेष-विनाशन, शासन-स्यन्दन।
सन्मति-कारण, कुमति निवारण, भवभय-हारण, शीतल चन्दन!

२. जय करुणा-वरुणालय जय जय, जीव सभी करते अभिनन्दन।
जय सुख-कन्दन, दुरित-निकन्दन, जय जग-वन्दन, त्रिशला-नन्दन ॥

(३६)

जय बोलो महावीर स्वामी की, घट घट के अन्तरयामी की।
.जय बोलो महावीर स्वामी की ॥टेर॥

१. जिस जगती का उद्धार किया, जो आया शरण वह पार किया।
जिस पीड़ सुनी हर प्राणी की—जय०

२. जो पाप मिटाने आया था, जिन भारत ज्ञान जगाया था।
उस त्रिशला-नन्दन ज्ञानी की—जय०

३. जिसने राज पाट को छोड़ दिया, बारह वर्ष तप घोर किया।
उस शान्त वीर रसगामी की—जय०

४. जिन स्याद्वाद सिद्धान्त दिया, जिसने सब झगड़ा मेट दिया।
है देन सभी उस नामी की—जय०

५. जिस जीव अजीव को तोल दिया, फिर तत्व ज्ञान अनमोल दिया।
उस महामोक्ष – पदगामी की—जय०

६. हो लाख बार परणाम तुम्हें, हे वीर प्रभु ! भगवान् तुम्हें।
मुनि दर्शन मुक्ति-गामी की—जय०

(३७)

जिनन्द मांय दीठा ए सुपना सार ॥ टेर ॥

१. पहले गयवर देखियोजी सूँडा दण्ड प्रचण्ड।
दूजे वृषभ देखियोजी धोरी धोलो सण्ड—जिनन्द०

२. तीजे सिंह सुलक्षणोजी करतो मुख बगास।
चौथे लक्ष्मी देवता जी, कर रह्या लील विलास—जि०

३. पंच वरण फूलां तणीजी, माला देखी सुवास ।
छट्ठे चन्द्र उजासियोजी अमीय भरे आकाश–जि०

४. दिनकर ऊगो तेजसूंजी किरणां झांक झमाल ।
फरकती देखी धजाजी, ऊँची अति असराल–जि०

५. कुम्भ कलश रतना जड्योजी उदकभर्यो सुविशाल ।
कमल फूलां को ढाकणोंजी, नवमें स्वप्न रसाल–जि०

६. पद्म सरोवर जल भर्योजी कमला करी सुसोभाय ।
देव देवी रंग में रमेजी, देख्यां आवे दाय–जि०

७. क्षीर समुद्र चारों दिशाजी, जेनो मीठो नीर ।
दूध जैसो पानी भर्यो जी कठिन पावणो तीर–जि०

८. मोत्यां केरा झूंबकाजी देख्या देव विमान ।
देव देवी, कौतुक करेजी आवतां असमान–जि०

९. रत्नां की राशि निरमलीजी देख्यो स्वप्न उदार ।
स्वप्नो देख्यो तेरमोजी हिवड़े हर्ष अपार–जि०

१०. ज्वाला देखी दीपतीजी अगन शिखा बहु तेज ।
इतने जाग्या पदमणीजी वरतां स्वप्ना से हेज–जि०

११. गजगति चाल्या मलकताजी आया राजन् पास ।
भद्रासन आसन दियो जी राय पूछे हुल्लास–जि०

१२. कहो किण कारण आवियाजी कहो थांरा मननी वात ।
चवदे स्वप्ना देखियाजी अर्थ कहो साक्षात्–जि०

१३. स्वप्ना सुनी राय हर्षियाजी कीनो स्वप्न विचार ।
तीर्थंकर चक्रवरत हुसीजी तीन लोक आधार–जि०

१४. प्रभाते पंडित तेड़ियाजी कीनो स्वप्न विचार ।
तीर्थङ्कर चक्रवरत हुसीजी तीन लोक करतार–जि०

१५. पंडित ने वहु धन दियोजी वस्तरने फूलमाल।
गर्भवास पूरा थया जद् जनम्या पुन्यवंत वाल–जि०

१६. चोसठ इन्द्र आवियाजी छप्पन दिशा कुंवार।
अशुचि कर्म निवारने जी गावे मंगलाचार–जि०

१७. प्रतिविम्व घर में धर्यो जी माताजी ने विश्वास।
शक्र इन्द्र लीधा हाथ में जी पंच रूप प्रकाश–जि०

१८. मेरु शिखर न्हवावियाजी तेहनो वहु विस्तार।
इन्द्रादिक सुर नाचियाजी नाची अपसरा नार–जि०

१९. अठाई महोत्सव सुर करेजी दीप नन्दीश्वर जाय।
गुण गावे प्रभुजी तणाजी हियड़े हरप न मांय–जि०

२०. परभाते सुपना जो भणेजी भणता आनन्द थाय।
रोग शोक दूरा टले जी अशुभ कर्म सव जाय–जि०

(३८)

जो आनन्द मंगल चाहो रे मनाओ महावीर।

१. प्रभु त्रिशला जी के जाया है, कन्चन वरणी काया।
ज्यां के चरणां शीश नमावो रे–मनाओ०

२. प्रभु अनन्त ज्ञान गुणधारी, ज्यांरी सूरत मोहन गारी।
ज्यांका दर्शन कर सुख पाओरे–मनाओ०

३. प्रभु जी की मीठी वाणी, है अनन्त सुखों की खानी।
थें धार धार तिर जाओ रे–मनाओ०

४. ज्यांके शिष्य वड़ा है नामी, सदा सेवो गौतम स्वामी।
जो रिद्ध सिद्ध थें चावो रे–मनाओ०

५. थांरा सर्व विघ्न टल जावे, मन वांछित सुख प्रगटावे।
फिर आवागमन मिटाओ रे–मनाओ०

६. साल उगणीस सौ गुण्यासी भाई, देवास शहर के मांही।
कहे 'चौथमल' गुण गावो रे–मनाम्रो०

(३९)

१. जो भगवती त्रिशला तनय, सिद्धार्थ कुल के भान हैं,
लिया जन्म क्षत्रियकुण्ड में, प्रियनाम श्री वर्द्धमान है।
२. जो स्वर्ण-वर्ण प्रलम्बभुज, सरसिज नयन अभिराम हैं,
करुणा सदन मर्दन मदन, आनन्दमय गुणधाम है।
३. जो अनन्त ज्ञानी हैं प्रभो ! और अनन्त शक्ति वान् हैं,
किस मुख से गुण वर्णन करूं, मेरी तो एक जबान है।
४. योगीन्द्र मुनि चिन्तन करत, जिनका कि आठों याम हैं,
उन वर्द्धमान जिनेश को, मेरे अनेक प्रणाम हैं।

(४०)

१. तीरथनाथ सिद्धारथ सुत को, नित नित सुमिरण कीजे ।।टेर।।
दिन दिन वधे सवाई प्रभुता, सकल मनोरथ सीझे–तीरथ०
२. जिण घर कल्पवृक्ष चित्रा वेली, काम धेनू दोहीजे।
काम – कुंभ चिन्तामणि सेवे, वांछित भोग लहीजे–तीरथ०
३. इण थी अधिक नाम प्रभुजी को, जो निश्चय चित्त लीजे।
तिण घर कमी रहै नहीं कोई, रिद्धि सिद्धि वृद्धि पामीजे–तीरथ०
४. पुद्गल वस्तु सकल इण भव की, क्षण शोभा दे छीजे।
प्रभु के नाम मिलें सुख सम्पति, भव-भव अक्षय कहीजे–तीरथ०
५. ज्यूं पनिहारिन का चित कुंभ में, त्यूं प्रभु में चित्त दीजे।
'विनयचन्द' पहुंचे शिवपुर में, जो अनुभव रस पीजे–तीरथ०

(४१)

१. महावीर शूरवीर महाबली महाधीर,
वांणी मीठी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।
नागणी सी नारी जाण घट में वैराग्य आण,
जीत लियो जग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है॥
२. चौदह हजार सन्त तार दिया भगवन्त,
कर्मा को कियो अन्त [illegible] [illegible] [illegible] है।
भणे मुनि 'चन्द्रभाण' सुनो हो विवेकवान,
महावीर धरियां ध्यान उपजे आनन्द है॥
३. पाप पन्थ परिहर मोक्ष पन्थ पग धर,
अभिमान दूर टार निन्दा को निवारी है।
संसारियों का छोड़ा संग आलस न आवे अंग,
ज्ञान सेती राखे रंग मोटा उपकारी है॥
४. मन मांहि निरमल जैसे है गंगा को जल,
काटे ते करमदल नव तत्त्व धारी है।
संयम की करे खप वारे भेदे तपे तप,
ऐसे अणगार वांको 'वन्दना' हमारी है॥
वर्द्धमान जपे जाप सारा ही आनन्द है॥

(४२)

१. श्री महावीर स्वामी की, सदा जय हो सदा जय हो।
पतित पावन जिनेश्वर की, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०
२. तुम्हीं हो देव देवन के, तुम्हीं हो पीर पैगम्बर।
तुम्हीं ब्रह्मा तुम्हीं विष्णु, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०
३. तुम्हारे ज्ञान खजाने की, महिमा बहुत भारी है।
लुटाने से बढ़े हर दम, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा

४. तुम्हारी ध्यान मुद्रा से, अलौकिक शान्ति झरती है।
सिंह भी गोद पर सोते, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०

५. तुम्हारा नाम लेने से, जागती वीरता भारी।
हटाते कर्म लश्कर को, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०

६. तुम्हारा संघ सदा जय हो, 'मुनि मोतीलाल' सदा जय हो!
'जवाहरलाल' पूज्य गुरु राज, सदा जय हो सदा जय हो—श्रीमहा०

(४३)

१. श्री सिद्धारथ कुलदीपक चन्द, त्रिशला दे राणी नो नन्द।
कोमल कंचनवर्ण शरीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

२. कृपानाथ करी करुणा घणी, मुझ सामूं जूओ शासन-धणी।
त्रिभुवन नाथ आयो अब तीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

३. अनन्तबली तप दुक्कर किया, सभी कर्म कूं दावानल दिया।
सम दम खम ने धारी धीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

४. चुम्मालीसे चेला किया, एकज दिन में महाव्रत दिया।
गौतम—सरिखा हुआ वजीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

५. समोसरणमां सुण्यो अधिकार, अमृतवाणी रूप दीदार।
दीठे हरखे हैडूं हीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

६. एक पल धरे प्रभुजी नूं ध्यान, पग—पग प्रगटे पुण्यनिधान।
वचन मीठा जिम मिसरी खीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

७. चैन पामैं चिन्ता चकचूर, देखी दुश्मन नासे दूर।
दिन—दिन वाढ़े सम्पत्ति शीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

८. तुम नामे भव—सागर तरे, तुम नामे सव कारज सरे।
ऋद्धि—वृद्धि पामें वर चीर, मन वंछित पूरण महावीर॥

९. चिन्तामणि जिम जिनवर जाप, क्रोड़ भवोनां काटे पाप।
रोग शोक नाशे भव पीर, मन वंछित पूरण महावीर ॥

१०. वैसाख सुदि दशमी दिन जाण, प्रभुजी पाम्या केवल नाण।
सागर-जैसा होत गम्भीर, मन वंछित पूरण महावीर ॥

११. संवत अठारह तेतीसे ताम, मेड़ता नगर किया गुणग्राम।
षट् कायानां प्रभुजी पीर, मन वंछित पूरण महावीर ॥

१२. प्रभु पावापुरी मां मुक्ति गया, ऋषि 'रायचन्द' कहे करज्यो मया।
पहूंचाड़ो मुझ भव-जल तीर, मन वंछित पूरण महावीर ॥

(४४)

हमारी वीर हरो भव पीर।

१. मैं दुःख-तपित दयामृत सर सम, लख आयो तुम तीर।
तुम परमेश मोख मग-दर्शक, मोह दावानल-नीर ॥

२. तुम विन हेतु जगत-उपकारी, शुद्ध चिदानन्द धीर।
गणपति-ज्ञान समुद्र न लंघै, तुम गुणसिन्धु गम्भीर ॥

३. याद नहीं मैं विपति सही जो, धर-धर अमित शरीर।
तुम गुण चिन्तत नशत तम भय, ज्यों घन चलत समीर ॥

४. कोटि वार की अरज यही है, मैं दुःख सहूं अधीर।
हरहूं वेदना-फन्द 'दौल' को, कतर कर्म-जंजीर ॥

(४५)

१. अंगुष्ठे अमृत वसे, लब्धितणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वंछित फल दातार ॥

(४६)

ॐ जय गौतम स्वामी प्रभु, जय गौतम स्वामी।
ऋद्धि सिद्धि के दाता, प्रणमूं सिर नामी, ॐ जय गौतम स्वामी ॥

१. वसुभूति है तात तुम्हारे, पृथ्वी के जाया ।।स्वामी।।
कंचन वर्ण अनूपम, सुन्दर तन पाया ।।ओऽम्।।
२. ठाम ठाम सूत्रों में, नाम तेरा आवे ।।स्वामी।।
चार ज्ञान चवदह पूर्व धर, सुर नर गुण गावे ।
३. महावीर से गुरु तुम्हारे, जगतारण हारे ।।स्वामी।।
सब मुनियों में शिरोमणि, गणधर तुम प्यारे ।
४. भव्य हितारथ तुमने, किया निर्णय भारी ।।स्वामी।।
पूछे प्रश्न अनेकों, निज आतम तारी ।
५. गौतम गौतम जाप जपे से, दुःख दारिद्दर जावे ।।स्वामी।।
सुख सम्पति यश लक्ष्मी, अनायास पावे ।
६. भूत प्रेत डायनि भय नासे, गौतम ध्यान धरे ।।स्वामी।।
गजानन्द आनन्द करो, यों 'चौथमल' गावे ।

(४७)

१. वीर जिनेश्वर–केरो शीस, गौतम नाम जपो निश दीस ।
जो कीजे गौतमनो ध्यान, ते घर विलसे नवे निधान ।।
२. गौतम–नामे गजवर चढ़े, मनवंछित हेला सांपड़े ।
गौतम नामे नावे रोग, गौतम नामे सर्व संयोग ।।
३. जे वैरी विरुआ वंकड़ा, तस नामे नावे नेड़ा ।
भूत प्रेत नवि मंडे प्राण, ते गौतमना करूं बखाण ।।
४. गौतम नामे निर्मल काय, गौतम नामे वाढ़े आय ।
गौतम जिन शासन-सिणगार, गौतम नामे जय जयकार ।।
५. शाल दाल गोरस घृत गोल, मनवंछित कापड़ तंबोल ।
घरे सुघरणी निर्मल चित्त, गौतम नामे पुत्र विनीत ।।

६. गौतम ऊग्यो अविचल भाण, गौतम नाम जपो जग-जाण।
म्होटा मन्दिर मेरु-समान, गौतम नामे सफल विहान ॥

७. घर मयंगल घोड़ानी जोड़, वारू पहुंचे वंछित कोड़।
महियल माने म्होटा राय, जो तूठे गौतमना पाय ॥

८. गौतम प्रणम्यां पातक टले, उत्तम नरनी संगति मिले।
गौतम नामे निर्मल ज्ञान, गौतम नामे वाधे मान ॥

९. पुण्यवंत अवधारो सहू, गुरु गौतम ना गुण छै बहू।
कहे 'लावण्यसमय' कर जोड़, गौतम तूठे सम्पत्ति कोड़ ॥

(४८)

१. श्री इन्द्रभूतिजी का लीजे नाम, तो मन वांछित सीझै काम।
मोटा लब्धि तणा भण्डार, वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

२. अग्निभूति गौतमजी का भाई, वीरजी ने दीठा समता आई।
ऋद्धि त्याग लियो संजम भार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

३. वायुभूति मोटा मुनिराय, ये तीनों ही सगा भाय।
पांच पांच सौ निकल्या लार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

४. विगतस्वामीजी चौथा जाण—भजन कियां मिले अमर विमाण।
देवलोके सुख रा झणकार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

५. स्वामी सुधर्मा वीरजी रे पाट—जन्म मरण सेवक ना काट।
मुझ ने आप तणो आधार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

६. मंडिपुत्र ने मोरिपूत—मुक्ति जावण रो कर दियो सूत।
त्रिविधे त्याग्या पाप अठार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

७. अकम्पित ने अचलभ्रात—वीरजी रे वचने रह्या ज रात।
चवदह पूरब ना भण्डार—वन्दूं इग्यारह गणधार ॥

८. मेतारज ने श्री प्रभास—मोक्षनगर में कर दियो वास।
   जपतां होवे जय जयकार—वन्दूं इग्यारह गणधार॥

९. ये इग्यारह उत्तम जात—चम्मालीस सौ निकल्या लार।
   ज्यां कर दीनो खेवो पार—वन्दूं इग्यारह गणधार॥

१०. इण नामें सहू आशा फले, दोषी दुश्मन दूरा टले।
   ऋद्धि वृद्धि पामे सुखसार—वन्दूं इग्यारह गणधार॥

११. इण नामे सब नाशे पाप, नित रा जपिये भविजन जाप।
   चित्त चोखा हृदय में धार—वन्दूं इग्यारह गणधार॥

१२. संवत् अठारह (सौ) तियालिस, जाण-पूज्य जयमलजी री अमृतवाण।
   चौमासे स्तवन कियो पीपाड़—वन्दूं इग्यारह गणधार॥

१३. अषाढ़ सुदि सातम रे दिन—गणधरजी ने गाया इकमन।
   'आशकरण' भणे अणगार—वन्दूं इग्यारह गणधार॥

(४९)

श्री महावीर पहोंत्या निर्वाण, गौतम स्वामीए वातज जाणी।

१. गुरांजी तुम मंने गोड़े न राख्यो-ए आंकड़ी॰
   मुगति जावणरो नाम न दाख्यो—गुरांजी॰

२. हुं सगलां पहेला हुवो थारो चेलो,
   इण अवसर आगो किम मेल्यो—गुरांजी॰

३. प्रभु तुम चरणे म्हारो चित्त लाग्यो,
   पर तुम मंने मेल दियो आगो—गुरांजी॰

४. मंने दर्शन आपको लागतो प्यारो,
   आप पहोंत्या निर्वाण मुझे मेल दियो न्यारो—गुरांजी॰

५. आपे तो मुझ से अंतर राख्यो,
   पिण मैं म्हारा मनरो दर्द न दाख्यो—गुरांजी॰

६. हुं आड़ो मांडीने न झालत पल्लो,
पण तुम साहिब काम कियो नहीं भल्लो–गुरांजी०

७. हुं आपने अंतराय न देतो,
मुगति में जग्या व्हेंची न लेतो–गुरांजी०

८. हुं संकड़ाई न करतो कांई,
आप साथे हुं मोक्ष आई–गुरांजी०

९. अब हूं पृच्छा करशूं किण आगे,
प्रभु म्हारो मन एक थांशुंज लागे–गुरांजी०

१०. म्हारो शंको कहो कूण टाले,
आप विना पाखंडीना मद कूण गाले–गुरांजी०

११. हुं तो चौदह पूरवने चौनाणी,
पिण मोहनीय कर्म लपेट्यो आणी–गुरांजी०

१२. इसो गौतम स्वामीये कियो विलपात,
ए मोहनीय कर्मनी अचरज वात–गुरांजी०

१३. हवे मोहनीय कर्म दूर टाली,
गौतम स्वामीए सूरत संभाली ।।

१४. वीतराग राग – द्वेषसुं वीत्या,
म्हारा चित्तमां आई गई चिंता–वीतराग०

१५. तिणि वेला निर्मल ध्यानज ध्यायो,
केवल ज्ञान गौतम स्वामीए पायो–वीतराग०

१६. बारह वरस रह्या केवलज्ञानी,
वात ज्यांसूं कांइ रही न छानी–वीतराग०

१७. गौतमे पण कियो मुगति में वासो,
संसारनो सर्व देखे तमासो–वीतराग०

१८. जेणि राते सुगति गया वर्द्धमान,
इन्द्रभूति ने उपज्यु केवल ज्ञान–वीतराग०

१९. तिन दिन थी ए बाजी दिवाली,
म्होटो दिन ए मंगल माली–वीतराग०

२०. रात दिवालीनी शीयल तुम पालो,
वली, रात्रि भोजन करवो टालो–वीतराग०

२१. ऋषि 'रायचन्द्र' कहे सुणो हो सुज्ञानी,
दयारूपी दिवाली थें लीजो मानी–वीतराग०

२२. श्री शासन नायक सुगति दायक, दया मारग उजुवालियो।
श्री गौतम स्वामी सुगति गामी, कियो चित वल्लभ चौढालियो॥

२३. संवत् अठारे गुणचालीशे, नागौर चौमासो निर्मल मनें।
पूज्य जैमलजी प्रसादे, संपूर्ण कियो दीवाली दिने॥

(५०)

१. आदिनाथ आदि जिनवर वंदी, सफल मनोरथ कीजिए।
प्रभाते उठी मंगलिक कामे, सोलह सतियों ना नाम लीजिये॥

२. बालकुमारी जगहितकारी, ब्राह्मी भरतनी बेनड़ीए।
घट घट व्यापक अक्षर रूपे, सोलह सतिमां जे वडीए॥

३. बाहुबल भगिनी सतीए शिरोमणि, सुन्दरी नाम ऋषभ सुताए।
अंक स्वरूपी त्रिभुवन मांहे, जेह अनुपम गुण जुताए॥

४. चन्दनबाला बालपने सूं, शीयलवन्ती शुद्ध श्राविकाए।
उड़दना बाकुला वीर प्रतिलाभ्या, केवल लही व्रत भाविकाए॥

५. उग्रसेन धूया धारिणी नंदिनी, राजीमती नेम वल्लभाए।
जोबन वेशे काम नें जीत्या, संजम लइ देव दुल्लभाए॥

६. पंच-भरतारी पांडव नारी, द्रुपद तनया बखाणीए।
एकसो आठे चीर पुराणा, शीयल महिमा तस जाणिए॥

७. दशरथ नृप नी नारी निरुपम, कौशल्या कुल चन्द्रिकाए।
शीयल सलुणी राम जनेता, पुन्य तणी प्रणालीकाए॥

८. कोसंबिक ठामें संतानिक नामें, राज्य करे रंग राजियोए।
तस घर घरणी मृगावती सती, सुर भुवने जश गावीयोए॥

९. सुलशा सांची शीयले न कांची, राची नहीं विषया रसेए।
मुखडुं जोतां पाप पलाए, नाम लेतां मन हुल्लसेए॥

१०. राम रघुवंशी तेहनी कामिनी, जनकसुता सीता सतीए।
जग सहु जाणे धीजकरंता, अनल शीतल थयो शीयलथीए॥

११. सुर नर वंदित शीयल अखंडित, शिवा शिव पद गामिणीए।
जपते नामे निर्मल थइए, वलिहारी तस नामनीए॥

१२. कांचे तांतणे चालणी बांधी, कूप थकी जल काढीयुंए।
कलंक उतारवा सतीए सुभद्रा, चम्पा द्वार उघाडीयुंए॥

१३. हस्तिनापुरे पांडु राय नी, कुन्ती नामे कामिनीए।
पांडव माता दसे दशार्हनी व्हेन, पतिव्रता पद्मिनीए॥

१४. शीलवती नामे शीलव्रतधारिणी, त्रिविधे तेहने वंदीयेए।
नाम जपंता पातक जाए, दरीसणे दुरित नीकंदीए॥

१५. निषधा नगरी नल नरींदनी, दमयन्ती तस गेहिनीए।
संकट पड़तां शीयलज राख्युं, त्रिभुवन कीरति जेहनीए॥

१६. अनंग अजीता जग जन पुजीता, पुष्पचुला ने प्रभावतीए।
विश्वविख्याता कामीत दाता, सोलमी सती पद्मावतीए॥

१७. वीरे भांखी शास्त्रे साखी, उदय रतन भाखे मुदाए।
व्हाणुं वातां जे नर भणशे, ते लेशे सुख सम्पदाए।

(५१)

१. शीतल जिनवर करूं प्रणाम, सोलह सतीरा लेसूं नाम।
ब्राह्मी चन्दना राजमती, द्रौपदी कौशल्या मृगावती।
२. सुलसा सीता सुभद्रा जाण, शिवा कुन्ती शीलगुण खाण।
नल-घरणी दमयन्ती सती, चेलना प्रभावती पद्मावती।
३. शील तणे सुहावे सिरी, ऋषभ देवनी धिया सुन्दरी।
सोलह सतियां शील गुणभरी, भवियण प्रणमो भावे करी।।
४. ये सुमरियां सब संकट टलें, मनचिन्तित मनोरथ फलें।
इण नामे सब सीझे काज, लहिये मुक्ति पुरी नो राज।।
५. भूत प्रेत इण नामें टले, ऋद्धि सिद्धि घर आई मिले।
इण नामे सहू होय जगीश, ये सतियां सुमरो निश दीश।।

(५२)

ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु देव, जयगुरु जयगुरु जयगुरु देव।
१. देव हमारे श्री अरिहंत, गुरु हमारे गुणी जन सन्त।
सूत्र हमारा सत्य-निधान, धर्म हमारा दया–प्रधान।।
२. श्रमण भगवन्त श्री महावीर, त्रिशला नन्दन हरियो पीर।
अधम उद्धारण श्री अरिहन्त, पतितपावन भज भगवंत।।
३. गुरु गौतम सुमरो हर बार, घर-घर बरते मंगलाचार।
बोलो सब मिल जय जयकार, होवे अपना भी उद्धार।।

(५३)

ओम् जय जय गुरु देवा, स्वामी जय जय गुरु देवा।
जो ध्यावे तिर जावे, पावे शिव सुख मेवा।।टेर।।

१. पंच महाव्रत धारे जग वैभव छोड़ा स्वामी ।
संयम शुद्ध आराधे प्रभु से नेह जोड़ा–ओऽम्०
२. सकल जीव प्रति बोधे राग द्वेष टारे स्वामी ।
अखंड बाल ब्रह्मचारी सुर सेवा सारे–ओऽम्०
३. पाखंड दूर हटावे सुपथ दिखलावे स्वामी ।
धन्य धन्य जिन मुनिवर तारे तिर जावे–ओऽम्०
४. आठों याम एक काम जिनों का प्रभु में ध्यान लगे स्वामी ।
गुरुवर के गुण गातां, सोते भाग्य जगे–ओऽम्०
५. 'जीत' शरण में आयो महर नजर कीजो स्वामी ।
सेवक ने अब स्वामी तुम सम कर लीजो–ओऽम्०

(५४)

गुरु बिन कौन बतावे बाट ? बड़ा विकट यमघाट ॥ध्रु०॥
१. भ्रांति की पहाड़ी नदियां बिचमीं, अहंकारकी लाट ।
काम क्रोध दो पर्वत ठाढ़े, लोभ चोर संघात ॥
२. मद मत्सरका मेह बरसत, माया पवन वहे दाट ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, क्यों तरना यह घाट ॥

(५५)

जय बोलो रत्न मुनीश्वर की, धन्य कुशल वंश के पटधरकी ।
१. पूज्य भूधर महिमाशाली थे, कुशलेश शिष्य हितकारी थे ।
थे मूल भूमि रत्नाकर की–जय०
२. श्री गुमानचन्द्र गुरुवर पाया, लघु वय में संयम अपनाया ।
श्रो गंग गुलावा सुत-वर की–जय०

७. चौवीसे जिननां, सगला ही गणधार ।
चौदहसौ ने बावन, ते प्रणमूं सुखकार ॥

८. जिन शासन नायक, धन्य श्री वीर जिनन्द ।
गौतमादिक गणधर, वर्त्यो आनन्द ॥

९. श्री ऋषभदेव ना भरतादिक सौ पूत ।
वैराग्य मन आणी, संयम लियो अद्‌भुत ॥

१० केवल उपजाव्यूं, करि करणी करतूत ।
जिनमत दीपावी, सगला मोक्ष पहूंत ॥

११. श्री भरतेश्वर ना हुआ पटोधर आठ ।
आदित्य जशादिक, पहुंत्या शिव पुर वाट ॥

१२. श्री जिन-अन्तर ना, हुआ पाट असंख ।
मुनि मुक्ति पहुंत्या, टालि कर्मनो वंक ।

१३. धन्य कपिल मुनिवर-नमी नमुं अणगार ।
जेणे तत्क्षण त्यागियो, सहस्र-रमणी परिवार ॥

१४. मुनि वल हरिकेशी, चित्त मुनीश्वर सार ।
शुद्ध संयम पाली, पाम्या भवनो पार ॥

१५. वलि इक्षुकार राजा, घर कमलावती नार ।
भगू ने जशा, तेहना दोय कुमार ॥

१६. छये छती ऋद्धि छांड़ी, लीधो संयम भार ।
इण अल्प कालमां पाम्या मोक्ष द्वार ॥

१७. वलि संयति राजा, हिरण आहिड़े जाय ।
मुनिवर गर्दभाली, आण्यो मारग ठाय ॥

१८. चारित्र लेईने, भेट्या गुरुना पाय ।
क्षत्री राज ऋषीश्वर, चर्चा करी चित लाय ॥

१९. वलि दशे चक्रवर्ती, राज्य रमणी ऋद्धि छोड़ ।
दशे मुक्ति पहुंत्या, कुल ने शोभा छोड़ ॥

२०. इण अवसर्पिणी काल मां आठ राम गया मोक्ष ।
बलभद्र मुनीश्वर, गया पंचमे देवलोक ॥

२१. दशार्ण भद्र राजा, वीर वांद्या धरि मान ।
पछि इन्द्र हटायो, दियो छकाय अभयदान ॥

२२. करकण्डू प्रमुख, चारे प्रत्येक बुद्ध ।
मुनि मुक्ति पहुंत्या, जीत्या कर्म महाजुद्ध ॥

२३. धन्य म्होटा मुनिवर, मृगापुत्र जगीश ।
मुनिवर अनाथी, जीत्या राग ने रीश ॥

२४. वलि समुद्रपाल मुनि, राजीमति रहनेम ।
केशी ने गौतम, पाम्या शिवपुर खेम ॥

२५. धन्य विजय घोष मुनि, जय घोष वलि जाण ।
श्री गर्गाचार्य, पहुंत्या छै निर्वाण ॥

२६. श्री उत्तराध्ययनमां, जिनवर कर्‌या वखाण ।
शुद्ध मन से ध्यावो, मन में धीरज आण ॥

२७ वलि खंदक सन्यासी, राख्यो गौतम-स्नेह ।
महावीर समीपे, पंच महाव्रत लेह ॥

२८. तप कठिन करीने, झौंसी आपणी देह ।
गया अच्युत देवलोके, चवि लेसे भव छेह ॥

२९. वलि ऋषभदत्त मुनि, सेठ सुदर्शन सार ।
शिवराज ऋषीश्वर, धन्य गांगेय अणगार ॥

३०. शुद्ध संयम पाली, पाम्या केवल सार ।
ये चारे मुनिवर, पहुंच्या मोक्ष मंझार ॥

३१. भगवंतनी माता, धन धन सती देवानन्दा ।
वलि सती जयन्ती, छोड़ दिया घर फन्दा ॥

३२. सति मुक्ति पहुंत्या, वली ते वीरनी नन्द ।
महासती सुदर्शना, घणी सतियों ना वृन्द ॥

३३. वलि कार्तिक शेठे, पड़िमा वही शूर वीर ।
जम्यो मोरां ऊपर, तापस वलती खीर ॥

३४. पछी चारित्र लीधूं, मित्र एक सहस्र आठ धीर ।
मरी हुओ शक्रेन्द्र, चवि लेसे भवतीर ॥

३५. वलि राय उदायन, दियो भाणेज ने राज ।
पछी चारित्र लेईने, सार्या आतम काज ॥

३६. गंगदत्त मुनि आनन्द, तिरण तारण नी जहाज ।
मुनि कौशल रोहो, दियो घणां ने साज ॥

३७. धन्य सुनक्षत्र मुनिवर, सर्वानुभूति अणगार ।
आराधक हुई ने, गया देव लोक मंझार ॥

३८. चवि मुक्ति जासे वली सिंह मुनीश्वर सार ।
वीजा पण मुनिवर, भगवती मां अधिकार ॥

३९. श्रेणिकनो वेटो, म्होटो मुनिवर मेघ ।
तजी आठ अंतेउर, आण्यो मन संवेग ॥

४०. वीर पै व्रत लेईने, वांधी तपनी तेग ।
गया विजय विमाने, चवि लेसे शिव वेग ॥

४१. धन्य थावच्चापुत्र, तजी वत्तीसों नार ।
तेनी साथे निकल्या, पुरुप एक हजार ॥

४२. शुकदेव सन्यासी एक, सहस्र शिष्य लार ।
पांचसौ से शेलक, लीधो संयम भार ॥

४३. सब सहस्र अढ़ाई, घणा जीवों ने तार।
पुण्डरिक गिरि ऊपर, कियो पादोपगमन संथार ॥

४४. आराधक हुई ने, कीधो खेवो पार।
हुआ म्होटा मुनिवर, नाम लियां निस्तार ॥

४५. धन्य जिन पाल मुनिवर, दोय धन्ना हुआ साध।
गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ॥

४६. श्री मल्लिनाथना छह मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय।
सर्वे मुक्ति सिधाव्या, म्होटा पदवी पाय ॥

४७. वलि जितशत्रु राजा, सुबुद्धि नामे प्रधान।
पोते चारित्र लई ने पाम्या मोक्ष निधान ॥

४८. धन्य तेतली मुनिवर, दियो छकाय अभयदान।
पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवल ज्ञान ॥

४९. धन्य पांचे पांडव, तजी द्रौपदी नार।
थेवर नी पासे, लीधो संयम भार ॥

५० श्री नेमी वन्दन नो, एहवो अभिग्रह कीध।
मास मास खमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध।

५१. धर्म घोप तणां शिष्य, धर्म रुचि अणगार।
कीड़ियों नी करुणा, आणी दया अपार ॥

५२. कड़वा तूंबानों, कीधो सगलो आहार।
सर्वार्थ सिद्ध पहुंच्या, चवि लेसे भव पार ॥

५३. वलि पुण्डरीक राजा, कुण्डरीक डिगियो जाण।
पोते चारित्र लेईने, न घाली धर्म मां हाण ॥

५४. सर्वार्थ सिद्ध पहुंत्या, चवि लेसे निर्वाण।
श्री ज्ञाता सूत्र मां, जिनवर कर्या वखाण ॥

५५. गौतमादिक कुंवर, सगा अठारे भ्रात ।
सब अन्धक विष्णु सुत, धारिणी ज्यांरी मात ।।

५६. तजी आठ अंतेउर, काढ़ी दीक्षा नी बात ।
चारित्र लई ने, कीधो मुक्ति नो साथ ।।

५७. श्री अनिक सेनादिक, छहे सहोदर भाय ।
वसुदेवना नन्दन, देवकी ज्यांरी मांय ।।

५८. भद्दिलपुर नगरी, नाग गाहावई जाण ।
सुलसा घर वधिया, सांभली नेमिनी वाण ।।

५९. तजी बत्तीस-बतीस अंतेउर, निकलिया छिटकाय ।
नल कूवर समाना, भेट्या श्री नेमिना पाय ।।

६०. करी छठ छठ पारणा, मन में वैराग्य लाय ।
एक मास संथारे, मुक्ति विराज्या जाय ।।

६१. वलि दारुक सारण, सुमुख दुमुख मुनिराय ।
वलि कुंवर अनाहृष्ट, गया मुक्ति गढ़ मांय ।।

६२. वसुदेवना नन्दन, धन-धन गज सुकुमाल ।
रूपे अति सुन्दर, कलावन्त वय बाल ।।

६३. श्री नेमि समीपे, छोड्यो मोह जंजाल ।
भिक्षुनी पड़िमा, गया मसाण महाकाल ।।

६४. देखी सोमिल कोप्यो, मस्तक बांधी पाल ।
खेरनां खीरा, शिर ठविया असराल ।।

६५. मुनि नजर न खण्डी, मेटी मननी झाल ।
परीसह सही ने, मुक्ति गया तत्काल ।।

६६. धन्य जाली मयाली, उवयालादिक साध ।
सांब ने प्रद्युम्न, अनिरुद्ध साधु अगाध ।।

६७. वलि सतनेमि दृढ़ नेमि, करणी कीवी निर्बाध ।
दशे मुक्ति पहुंत्या, जिनवर वचन आराध ॥

६८. वन अर्जुन माली, कियो कदाग्रह दूर ।
वीर पै व्रत लईने, सत्यवादी हुआ नूर ॥

६९. करी छठ-छठ पारणा, क्षमा करी भरपूर ।
छह मास मांही, कर्म किया चकचूर ॥

७०. कुंवर अइमुत्ते, दीठा गौतम स्वाम ।
सुणि वीर नी वाणी, कीवो उत्तम काम ॥

७१. चारित्र लेईने पहुंत्या, शिवपुर ठाम ।
धुर आदि मकई, अन्त अलक्ष मुनि नाम ॥

७२. वलि कृष्ण राय नी, अग्रमहिषी आठ ।
पुत्र-बहू दोय, संच्या पुण्यना ठाठ ॥

७३. जादव कुल सतियां, टाल्यो दुःख उचाट ।
पहुंती शिवपुर मां, ओ छे सूत्र नो पाठ ॥

७४. श्रेणिक नी राणी, काली आदिक दश जाण ।
दशे पुत्रवियोगे सांभली वीरनी वाण ॥

७५. चन्दन बाला पै, संयम लेई हुई जाण ।
तप करि देह झौंसी, पहुंती छे निर्वाण ॥

७६. नन्दादिक तेरह श्रेणिक नृपनी नार ।
सगली चन्दनबाला पै, लीधो संयम भार ॥

७७. एक मास संथारे, पहुंती मुक्ति मंझार ।
यों नेवुं जणां नो, अन्तगड मां अधिकार ॥

७८. श्रेणिक ना बेटा, जालीयादिक तेवीस ।
वीर पै व्रत लेईने, पाल्यो विस्वावीस ॥

७९. तप कठिन करीने, पूरी मन जगीश।
देवलोके पहुंच्या, मोक्ष जासे तजी रीश ॥

८०. काकन्दी नो धन्नो, तजी बतीसों नार।
महावीर समीपे, लीधो संयम भार ॥

८१. करी छठ-छठ पारणा, आयंबिल उच्छित्त आहार।
श्री वीर बखाण्यो, धन्य धन्नो अणगार ॥

८२. एक मास संथारे, सर्वार्थ सिद्ध पहुंत।
महा विदेह क्षेत्र मां, करसे भवनो अन्त ॥

८३. धन्नानी रीते, हुआ नवे सन्त।
श्री अनुत्तरोववाई मां, भाखि गया भगवन्त ॥

८४. सुबाहु प्रमुख पांच पांच सौ नार।
तजी वीर पै लीधा, पांच महाव्रत धार ॥

८५. चारित्र लेईने, पाल्या निर अतिचार।
देवलोक पहुंत्या, सुख-विपाके अधिकार ॥

८६. श्रेणिक ना पोता, पौमादिक हुआ दस।
वीर पै व्रत लेईने, काढ्यो देहनो कस ॥

८७. संयम आराधी, देवलोक मां जई बस।
महाविदेह क्षेत्र मां, मोक्ष जासे लेई जस ॥

८८. बलभद्रना नन्दन, निषधादिक हुआ बार।
तजी पचास अन्तेउरी, त्याग दियो संसार ॥

८९. सहु नेमि समीपे, चार महाव्रत लीध।
सर्वार्थ सिद्ध पहुंत्या, होसे विदेहे सिद्ध ॥

९०. धन्ना ने शालिभद्र, मुनीश्वरों नी जोड़।
नारी ना बन्धन, तत्क्षण नांख्या तो

९१. घर कुटुम्ब कबीलो, धन कंचन नी कोड़ ।
मास मास खमण तप, टालसे भव नी खोड़ ॥

९२. श्री सुधर्मा स्वामी ना शिष्य धन धन जम्बू स्वाम ।
तजी आठ अन्तेउरी, मात-पिता धन धाम ॥

९३. प्रभवादिक तारी, पहुंत्या शिवपुर ठाम ।
सूत्र प्रवर्तावी, जग मां राख्यूं नाम ॥

९४. धन्य ढंढण मुनिवर, कृष्णराय ना नन्द ।
शुद्ध अभिग्रह पाली, टाल दियो भवफन्द ॥

९५. वलि खन्दक ऋषिनी, देह उतारी खाल ।
परीषह सहीने, भव फेरा दिया टाल ॥

९६. वलि खन्दक ऋषिना, हुआ पांच सौ शीश ।
घाणी मां पील्या, मुक्ति गया तज रीश ॥

९७. संभूति विजयतणां शिष्य, भद्रबाहु मुनि राय ।
चौदह पूर्वधारी, चन्द्रगुप्त आण्यो ठाय ॥

९८. वलि आर्द्रकुमार मुनि, स्थूलभद्र नन्दिषेण ।
अरणक अइमुत्तो मुनीश्वरो नी श्रेण ॥

९९. चौवीसे जिनना मुनिवर, संख्या अठावीस लाख ।
ऊपर सहस्र अड़तालीस, सूत्र परम्परा भाख ॥

१००. कोई उत्तम वांचो, मोंढ़े जयणा राख ।
उघाड़े मुख बोल्यां, पाप लगे इम भाख ॥

१०१. धन्य मरुदेवी माता, ध्यायो निर्मल ध्यान ।
गज–होदे पायो, निर्मल केवलज्ञान ॥

१०२. धन्य आदीश्वर नी पुत्री, ब्राह्मी सुन्दरी दोय ।
चारित्र लेईने, मुक्ति गई सिद्ध होय ॥

१०३. चौवीसे जिननी, वड़ी शिष्यणी चोवीश ।
सती मुकते पहुंत्या, पूरी मन जगीश ॥

१०४. चौवीसे जिननी, सर्व साधवी सार ।
अड़तालीस लाख ने, आठ से सत्तर हजार ॥

१०५. चेड़ोनी पुत्री, राखो धर्म सूं प्रीत ।
राजीमति विजया, मृगावती सुविनीत ॥

१०६. पद्मावती, मयणरेहा, द्रौपदी दमयन्ती सीत ।
इत्यादिक सतियां, गई जमारो जीत ॥

१०७. चौवीसे जिननां, साधु साधवी सार ।
गया मोक्ष देवलोके, हृदये राखो धार ॥

१०८. इण अढ़ाई द्वीप मां, करड़ा तपसी वाल ।
शुद्ध पंच महाव्रतधारी, नमो नमो तिहुंकाल ॥

१०९. इण यतियों सतियों नां, लीजे नितप्रति नाम ।
शुद्ध मन थी ध्यावो, एह तिरण नो ठाम ॥

११०. इण यतियों सतियों सूं राखो उज्वल भाव ।
इम कहे 'ऋषि जयमल', एह तिरण नो दाव ॥

१११. संवत् अठारा ने वर्ष साते शिरदार ।
गढ़ जालोर मांही, एह कह्यो अधिकार ॥

(५७)

प्रतिदिन जप लेना, त्यागी गुरुओं को भविजन भाव से ।

१. महावीर के शासन भूषण, धर्मदास मुनिराय ।
परम प्रतापी धर्म प्रचारक, थे आचार्य महान्—प्रति०
२. शिष्य निन्नाणु हुवे आपके, ज्ञान क्रिया में शूर ।
धन्नाजी ने मरुभूमि से, किया कुमत को दूर–हो—प्रति०

३. पट्टधर भूधर पूज्य प्रतापी, शिष्य जिन्हों के चार।
रघुपत, जयमल्ल, जेतसिंह, अरु कुशलचन्द्र लो धार—प्रति०

४. रघुपत, जयमल्ल, कुशलसिंहजी के, हुआ शिष्य समुदाय।
कुशल वंश के पूज्यों का, मैं ध्यान धरूं चित लाय—प्रति०

५. गुमानचन्द्र और रतनचन्द्रजी, शासन के शृंगार।
चाचा गुरु थे रतनचन्द्र के, दुर्गादास अनगार–हो—प्रति०

६. चारवीस संवत्सर लग यों, रखने को सम्मान।
रतनचन्द्र गणिपद नहीं लीना, पूज्य दुर्ग का मान–हो—प्रति०

७. दुर्गादास के बाद रत्नमुनि को दीना गणभार।
गुरु गुमान की मर्यादा में, गणपति थे सुखकार–हो—प्रति०

८. कुशल वंश के पूज्य तीसरे, हमीर मल्ल मुनिराय।
परम प्रतापी पूज्य कजोड़ी, महिमा कही न जाय–हो—प्रति०

९. पञ्चम पूज्य बहुश्रुत भारी, विनयचन्द मुनिराय।
शोभाचन्द्रजी पूज्य हुए छट्ठे, दमियों के शिरताज–हो—प्रति०

१०. वादी मर्दन कनीरामजी, बालचन्द तप धार।
चन्दन मुनिवर शीतल चन्दन, मुनित्रय थे सुखकार–हो—प्रति०

११. 'गजेन्द्र' सब पूज्यों का अनुचर, करता उनका ध्यान।
भाव सहित जो पढ़े भविक जन, पावे सुख निधान–हो—प्रति०

(५८)

१. वे गुरु मेरे उर बसो, जे भव जलधि जहाज।
आप तिरें पर तारहिं, ऐसे श्री मुनिराज—वे गुरु०

२. मोह महारिपु जीत के, छोड़े सब घर बार।
होय मुनीश्वर वन बसे, आतम शुद्ध विचार—वे गुरु०

३. रोग-उरग-बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान ।
कदलि-तरु संसार है, सब छोड़्या इम जान—वे गुरु०

४. पंच महाव्रत आदरें, पांचों समिति समेत ।
तीन गुपति पालें सदा, अजर अमर-पद-हेत--वे गुरु०

५. धरम धरें दस लक्षणी, भावें भावना बार ।
सहैं परीषह बीस-दो, चारित्र रतन भंडार—वे गुरु०

६. रतन-त्रय निज उर धरें, अरु निर्ग्रन्थ त्रिकाल ।
जीतें काम-पिशाच को, स्वामी परम दयाल—वे गुरु०

७. जेठ तपै रवि आकरो, सूखें सरवर नीर ।
शैल शिखर मुनि तप तपें, ठाड़े अचल शरीर—वे गुरु०

८. पावस रात भयावणी, वरसे जलधर - धार ।
तरु तल निवसे साहसी, बाजे झंझावार—वे गुरु०

९. शीत पड़े कपि-मद गले, दाझै सब वनराय ।
ताल तरंगिणी तट विषें, ठाड़े ध्यान लगाय—वे गुरु०

१०. इण विध दुर्धर तप तपैं, तीनों काल मंझार ।
लागें सहज स्वरूप में, तन सों ममत निवार—वे गुरु०

११. रंग – महल में पोढ़ते, जे कोमल सेज बिछाय ।
ते कंकराली भूमि में, सोवें संवर – काय—वे गुरु०

१२. गज चढ़ि चलते गर्व सों, जे सेना सज चतुरंग ।
निरखि निरखि भू पग वे धरें, पालें करुणा अंग—वे गुरु०

१३. पट्‌रस भोजन जीमते, जे सुवर्ण थाल मंझार ।
अब वे सब छिटकाय ने, प्रासुक् लेत आहार—वे गुरु०

१४. पूर्व – भोग न चिन्तवें, आगम वांछा नाय ।
चतुर्गति दुःख से डरें, सुरत लगी शिव मांहि—वे गुरु०

१५. वे गुरु चरण जहां धरें, जंगम तीरथ तेह ।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' मांगे एह—वे गुरु०

(५९)

श्री कुशल पूज्य का कीजे जाप, मिट जावे सब शोक सन्ताप ।

१. भव जल तारक गुरुवर बड़े, शान्त दान्त गम्भीर बड़े ।
नाम जप्यां कट जावे पाप—श्री कुशल०

२. ध्यान धरे तो दुरित टले, आधि, व्याधि सब रोग गले ।
हरे सभी का मानस ताप—श्री कुशल०

३. छती त्याग हुए अणगार, धन जन सुत छोड़ा परिवार ।
निश दिन प्रभु का कीजे जाप—श्री कुशल०

४. चंगेरिया कुल में हुए भान, जयमलजी गुरु भाई जान ।
गुरु भक्ति में रम रहे आप—श्री कुशल०

५. वरसों तक नहीं शयन किया, गुरु भाई का साथ दिया ।
तव गुण का नहीं पाऊं पार—श्री कुशल०

६. अशुभ अमंगल नाम न रहे, मुद मंगल तव नाम लहे ।
दुःख दूर सुख पावे बाप—श्री कुशल०

७. 'गजेन्द्र' जो भक्ति से रटे, कुशल नाम से संकट कटे ।
निर्मल चित्त करो भवि जाप—श्री कुशल०

(६०)

१. साधुजी ने वन्दना नित नित कीजे, प्रातः उगन्ते सूर रे प्राणी ।
नीच गति मां ते नहीं जावे, पामें ऋद्धि भरपूर रे प्राणी—साधुजी०

२. मोटा ते पंच महाव्रत पाले, छह कायारा प्रतिपाल रे प्राणी ।
भ्रमर-भिक्षा मुनि सूझती लेवे, दोष बियालीस टाल रे प्राणी—साधुजी०

३. ऋद्धि सम्पदा मुनि कारमी जाणी, दीधी संसार ने पूठ रे प्राणी ।
एवा पुरुषांनी सेवा करतां, आठ कर्म जाय टूट रे प्राणी—साधुजी०

४. एक एक मुनिवर रसना त्यागी, एक एक ज्ञान भंडार रे प्राणी ।
एक एक वैयावचिया वैरागी, जेना गुणांनो न आवे पार रे प्राणी-साधुजी०

५. गुण सत्तावीस करी ने दीपे, जीत्या परीषह बावीस रे प्राणी ।
बावन ते अनाचीरण टालें, तेने नमाऊं मारा शीश रे प्राणी—साधुजी०

६. जहाज समान ते सन्त मुनीश्वर, भव्य जीव बेसे आय रे प्राणी ।
पर उपकारी मुनि दाम न मांगे, देवें मुक्ति पहुंचाय रे प्राणी—साधुजी०

७. साधु-चरणे जीव सातारे पावे, पावे ते लील विलास रे प्राणी ।
जन्म जरा अने मरण मिटावे, नावे फरी गर्भावास रे प्राणी—साधुजी०

८. एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी ।
नरक गतिमां ते नहिं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी—साधुजी०

९. प्रात: उठी ने उत्तम प्राणी, सुणो साधुजी रो व्याख्यान रे प्राणी ।
एवा पुरुषां नी सेवा करतां, पावे अमर विमान रे प्राणी—साधुजी०

१०. संवत् अठारह ने वर्ष अड़तीसे, बूसी गांव चौमासो रे प्राणी ।
'मुनि आसकरण' इण पर जंपे, हुं तो उत्तम साधांरो दास रे प्राणी—सा०

(६१)

अयवंता मुनिवर, नाव तिराई वहता नीर में ।।टेर।।

१. पोलासपुरी नगरी के राजा, विजय सेन भूपाल ।
श्री देवी के अंग ऊपन्या, अयवंता कुमारजी—अय०

२. वेले वेले करे पारणो, गणधर पदवी पाया ।
महावीरजी की आज्ञा लेकर, गौतम गौचरी आयाजी—अय०

३. खेल रहे थे खेल कंवरजी, देखा गौतम आतां ।
घर घर मांहि फिरो हिड़ता, पूछे दूजी वातांजी—अय०

४. असनादिक लेने के काजे, निर्दोषज हम बहरां।
अंगुली पकड़ी कुंवर ऐवंता, लायो गौतम लारेजी—अय०

५. माता देखी कहे पुण्यवंता, भली जहाज घर आणी।
हर्ष भाव धर निज हाथन से बहराया अन्न पाणीजी—अय०

६. लारे लारे चल्या कंवरजी, भेट्या मोटा भाग।
भगवंता की वाणी सुणने, उपना मन वैराग्यजी—अय०

७. घर आवी माता सुं कीनी, अनुमति की अरदास।
बात सुनी माता पुत्र की, मन में आई हांसजी—अय०

८. तूं क्या जाणे साधुपणा में, बाल अवस्था थारी।
ऐसो उत्तर दियो कंवरजी, मात कहे बलिहारीजी—अय०

९. महोत्सव करीने संजम लीनो, हुआ बाल अणगार।
भगवंता का चरण भेंटिया, धन ज्यांरा अवतारजी—अय०

१०. वर्षा काल बरसियां पीछे, मुनिवर थंडिल जावे।
पाल बांध पानी में पातरा, नावां जाण तिरावेजी—अय०

११. नाव तिरे म्हारी नाव तिरे यों, मुख से शब्द उच्चारे।
साधां के मन शंका उपनी, किरिया लागे थांरेजी—अय०

१२. भगवंत भाखे सब साधां ने, भक्ति करो तहे दिल से।
हीला निन्दा मती करो कोई, चरम शरीरी जीवजी—अय०

१३. शासन पति का वचन सुणी ने, सबही शीश चढ़ाया।
ऐवंता की हुण्डी सिकरी, आगम मांहि गायाजी—अय०

१४. संवत उन्नीसे साल छेयालिस, भीलाड़ा सेखे काल।
'रतनचन्दजी' गुरु प्रसादे, गाई 'हीरालाल' जी—अय०

(६२)

१. अरणक मुनिवर चाल्या गोचरी, धरती दाभै ज्यूं शीशो जी।
पांव उभराणा रे सिर-पद जले, तन सुकुमाल मुनीश्वरो जी—अर०

२. मुख कमल ज्यांरा मालती फूल ज्यूं, ऊभो गोखे हेठो जी।
भरी दुपेरी में दीठ्यो एकलो, मोहिनी स्वामिनी दीठो जी–अर०

३, वयण रंगीली रे नयणा विधिया रिख ढव्यो तिण ठामोजी।
दासी ने कहे जाय उत्तर वलि, रिख तेड़ी ने लाम्रो जी–अर०

४. पावन कीजे हो मुझ घर-आंगणो, वेहरो मोदक सारोजी।
नवजोवन मारी काया कांई दहो, सफल करो जमारोजी–अर०

५. अरणक अरणक मां करती फिरे, गलियां गलियां भ्रमतीजी।
कहो किण दीठो रे मारो बालूड़ो, लारे बहु नर नारी जी–अर०

६. तिहां थी उतरी ने जननी पाय नमीयो, हुलसायो मन माता जी।
धिग् वत्स तोने रे चारित्र चूकियो, जेथी शिवपुर जाता जी–अर०

७. अगन ज्यूं तपत सिल्ला ऊपरे, अरणक अणसण कीधो जी।
'समय सुन्दर' कहे धन्य ते मुनिवर, मनवांछित पद लीधो जी–अर०

(६३)

१. नाम ऐला पुत्र जाणियो, 'धनदत्त' सेठ नो पूंत।
नटवी देखी नें मोहियो, नहीं लखियों घर नो सूत—करम०

२. करम न छूटे रे प्राणियां, पूरव नेह विकार।
निज कुल छांड़ी रे नट थयो, न आणी शरम लिगार—करम०

३. एक पुर आव्यो रे नाचवा, ऊंचो वांस विशेष।
तिहां राय आव्यो रे जोयवा, मिलिया लोक अनेक—करम०

४. दोय पग पेहरी रे पांवड़ी, वाँस चढ्यो गज गेल।
निरधारा ऊंपर नाचतो, खेले नवा नवा रे खेल—करम०

५. ढोल बजावेरे नटवी, गावे किन्नर साद।
पांय घुंघरू घमघमे, गाजें अम्बर नाद—करम०

६. तब राजेन्द्र मन चिंतवे, लुभाव्यो नटवी रे साथ।
जो नट पड़े रे नाचतो, तो नटवी आवे मुझ हाथ—क

७. दान न आपेरे भूपति, नट जाणी नृप बात।
"हूं धन वंछु रे रायनो, राय वंछे मुझ घात"—क

८. तब तिहां मुनिवर पेखिया, धन धन साधु निराग।
धिग् धिग् भिख्यारी जीव ने, इम पाम्यो वैराग—कर

९. संवर भावे रे केवली, थयो करम खपाय।
केवल महिमा रे सुर करे, 'लब्ध विजय' गुण गाय—करम

(६४)

१. राजगृहीना वासियाजी, 'जंबू' नाम कुमार,
'ऋषभदत्त'रा डीकराजी, 'भद्रा' ज्यांरी मांय।
जंबू कह्यो मान ले जाया, मत ले संजम भार ।।टेर।

२. सुधर्मा स्वामी पधारियाजी, राजगृही रे मांय।
'कोणिक' वांदण चालियोजी, जंबू वांदण जाय—जंबू

३. भगवंत वाणी वागरीजी, वरसै अमृतधार।
वाणी सुणी वैरागियाजी, जाण्यो अथिर संसार—जंबू

४. घर आया माता कनेजी, विनवे वारं वार।
अनुमति दीजो मोरी मातजी, माता लेसूं संजम भार।
माता मोरी सांभलो, जननी लेसूं संजम भार ।।टेर।

५. ये आठूंही कामणी जंबू, अपछर रे उणिहार।
परणी ने किम परिहरो, ज्यांरा किम निकले जमार—जंबू

६. ये आठूंही कामणी जंबू, तुम बिन विलखी थाय।
रमियां ठमियां सुं नीसरे, ज्यांरा वदन कमल विलखाय—जंबू

७. मत हीणो कोई मानवी, माता मिथ्या मत भरपूर।
रूप रमणी सूं राचियां, ज्यांरा नहीं हुवे दुरगत दूर—माता०

८. पाल पोस मोटो कियो, जंवू इम किम दो छिटकाय।
मात पिता मेले भूरता, थांने दया नहीं आवे दिल मांय—जंवू०

९. एक लोटो पानी पीयो, माता मायर बाप अनेक।
सगलांरी दया पालसूं, माता आणी ने चित्त विवेक—माता०

१०. ज्यूं आंधारे लाकड़ी जंवू, तूं म्हांरे प्राण आधार।
तुझ विन म्हारे जग सूनो, जाया जननी जीतव राख—जंवू०

११. रतन जड़त रो पींजरो माता, सुम्रो जाणे फंद।
काम भोग संसारना माता, ज्ञानी जाणे झूठो वंद—माता०

१२. पंच महाव्रत पालणो जंवू, पांचूं ही मेरु समान।
दोष बयालीस टालणा जंवू, लेणो सूझतो आहार—जंवू०

१३. पंच महाव्रत पालसूं माता, पांचूं ही सुख समान।
दोष बयालीस टालसूं माता, लेसूं सूझतो आहार—माता०

१४. संजम मारग दोहिलो जंवू, चलणो खांडेरी धार।
नदी किनारे रूंखड़ो जंवू, जद तद होय विनास—जंवू०

१५. चांद विना किसी चांदणी जंवू, तारा विन किसी रात।
वीरा विना किसी वेनड़ी जंवू, भुरसी वार तिवार—जंवू०

१६. दीपक विना मन्दिर सूनो जंवू, पुत्र विना परिवार।
कंत विना किसी कामिनी जंवू, झुरसी बारूं मास—जंवू०

१७. माता पिता मेलो मिल्यो, माता मिली अनंती बार।
तारण समरथ कोई नहीं माता, पुत्र पिता परिवार—माता०

१८. मोह मतकर मोरी मात जी, मोह कियां बंधे कर्म।
हालर हूलर कांई करो माता, करजो जिनजीरो धर्म—माता०

१६. ये आठूं ही कामणी जंवू, सुख विलसो संसार।
दिन पीछा पड़ियां पछै, थेंतो लीजो संजम भार—जंवू०

२० ए आठूं ही कामणी माता, समझाई एकण रात।
जिनजीरो धर्म पिछाणियो माता, संजम लेसी म्हारे साथ—माता०

२१. मात पिता ने तारिया जंवू, तारी छे आठूं ही नार।
सासू सुसरा ने तारिया जंवू, पांचसे प्रभव परिवार।
जंवू भलो चेतियो जाया, लीनो संजम भार ॥टेर॥

२२. पांचसे ने सत्ताईस जणा साथे, जंवू लीनो संजम भार।
इग्यारे जीव मुगते गया सरे, वाकी स्वर्ग मंझार—जंवू०

(६५)

१. वीरा ! म्हारा गज थकी हेठो उतर रे,
गज चढ्यां केवल नहीं होसी वंधव मांहरा गज थकी हेठो उतर रे—वीरा०

२. राज तणां लोभियो भरत-वाहुवली रे,
जूझे मूठ कटारी मारवा, वाहुवलि ! प्रतिवूझ रे—वीरा०

३. व्राह्मी सुन्दरी इम भाखे रे,
"ऋषभ जिनेश्वर मोकली, मोकली वाहुवलि तुम पासे रे—वीरा०

४. लोच करी संजम लीनो आयो वलि अभिमानो रे,
'लघु वन्धव वंदूं नहीं' काउसग्ग रह्या शुभ ध्यानो रे—वीरा०

५. वर्ष दिवस काउसग्ग रह्या वेलड़ियां लिपटाणी रे,
पंखेरु माला मांडिया-शीत ताप वहु सहणो रे"—वीरा०

६. साध्वी वचन सुणि करि, चमक्या चित्त मंझारो रे,
"हय गय पैदल रथ तज्या पण चढ्यो अहंकारो रे—वीरा०

७. वैराग्य मन में धारियो हूं तो तजूं अभिमानो रे",
चरण उठायो वांदवां—पाम्यो केवलज्ञानो रे—वीरा०

८. पहुंच्या है केवली परिषदा, बाहुबलि मुनिराजो रे,
अजर अमर पदवी लही 'समयसुन्दर' वंदे पायो रे—वीरा०

(६६)

गुण-स्थानक

१. अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे,
क्यारे थइशुं बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थ जो।
सर्व सम्बन्ध नुं बन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुष ने पंथ जो—अपूर्व०

२. सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयम-हेतु होय जो।
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं,
देहे पण किंचित मूर्च्छा नवि जोय जो—अपूर्व०

३. दर्शन मोह व्यतीत थइ उपज्यो बोध जे,
देह भिन्न केवल चैतन्यनुं ज्ञान जो।
तेथी प्रक्षीण चारित्र मोह विलोकिये,
वर्ते एवुं शुद्ध स्वरूप नुं ध्यान जो—अपूर्व०

४. आत्म-स्थिरता त्रण संक्षिप्त योगनी,
मुख्य पणे तो वर्ते देह-पर्यन्त जो।
घोर परीषह के उपसर्ग—भये करी,
आवी शके नहीं ते स्थिरता नो अन्त जो—अपूर्व०

५. संयम ना हेतु थी योग—प्रवर्तना,
स्वरूप-लक्षे जिन आज्ञा आधीन जो।
ते पण क्षण क्षण घटती जाती स्थितिमां,
अन्ते थाये निज स्वरूप मां लीन जो—अपूर्व०

६. पंच विषय मां रागद्वेष-विरहितता,
पंच प्रमादे न मिले मन नो क्षोभ जो।
द्रव्य क्षेत्र ने कालभाव-प्रतिबन्ध विण,
विचरवुं उदयाधीन पण वीत-लोभ जो—अपूर्व०

७. क्रोध प्रत्ये तो वर्ते क्रोध-स्वभावता,
मान प्रत्ये तो दीन पणानुं मान जो।
माया प्रत्ये माया-साक्षी भाव नी,
लोभ प्रत्ये नहीं लोभ समान जो—अपूर्व०

८. बहु उपसर्ग-कर्त्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं,
वन्दे चक्री तथापि न थाये मान जो।
देह जाय पण माया थाय न रोम मां,
लोभ नहीं छो प्रबल सिद्धि निदान जो—अपूर्व०

९. नग्नभाव मुंडभाव सह अस्नानता—
अदन्त धोवन आदि परम प्रसिद्ध जो।
केश, रोम, नख के अंगे शृंगार नहीं,
द्रव्य भाव संयम मय निर्ग्रन्थ सिद्ध जो—अपूर्व०

१०. शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता,
मान अमाने वर्ते स्वभाव जो।
जीवित के मरणे नहीं न्यूनाधिकता,
भव-मोक्षे पण वर्ते समभाव जो—अपूर्व०

११. एकाकी विचरतो वली श्मसान मां,
वली पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो।
अडोल आसन ने मन मां नहि क्षोभता,
परम मित्र नो जाणे पाम्या योग जो—अपूर्व०

१२. घोर तपश्चर्या मां पण मन ने ताप नहीं,
सरस अन्ने नहीं मन ने प्रसन्न भाव जो।
रज-कण के ऋद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो—अपूर्व०

१३. एम पराजय करी ने चारित्र मोहनो,
आवु त्यां ज्यां करण अपूर्व भाव जो।
श्रेणी क्षपक तणी करी ने आरूढ़ता,
अनन्य चिन्तन अतिशय शुद्ध स्वभाव जो—अपूर्व०

१४. मोह स्वयंभूरमण समुद्र तरी करी,
स्थिति त्यां ज्यां क्षीण मोह गुणस्थान जो—अपूर्व
अंत समय त्यां पूर्ण स्वरूप वीतराग थई,
प्रगटावु निज केवल ज्ञान निधान जो।

१५. चार कर्म घनघाती ते व्यवच्छेद ज्यां,
भव ना बीज तणो आत्यन्तिक नाश जो।
सर्वभाव ज्ञाता द्रष्टा सह शुद्धता,
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो—अपूर्व०

१६. वेदनीयादि चार कर्म वर्ते जहां,
बली सींदरिवत् आकृतिमात्र जो।
ते देहायुष आधीन जेनी स्थिति छे,
आयुष पूर्णे मिटिये दैहिक पात्र जो—अपूर्व०

१७. मन वचन काया ने कर्मनी वर्गणा,
छूटे जहां सकल पुद्गल सम्बन्ध जो।
एवु अयोगी गुणस्थान त्यां वर्ततु,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जो—अपूर्व०

१८. एक परमाणुमात्रनी मले न स्पर्शता,
पूर्ण कलंक-रहित अडोल स्वरूप जो।
शुद्ध निरंजन चैतन्य मूर्ति अनन्तमय,
अगुरुलघु अमूर्त सहज पद रूप जो—अपूर्व०

१९. पूर्व प्रयोगादि कारण ना योग थी,
ऊर्ध्व गमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो।
सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख मां,
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो—अपूर्व०

२०. जे पद श्री सर्वज्ञ दीठुं ज्ञान मां,
कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो।
तेह स्वरूप ने अन्य वाणी शुं कहे,
अनुभव गोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो—अपूर्व०

२१. एह परम पद प्राप्ति नुं कर्युं ध्यान मैं,
गजा वगर नो हाल मनोरथ रूप जो।
तो पण निश्चय 'राजचन्द्र' मन में रह्यो,
प्रभु आज्ञाये थाशुं तेज स्वरूप जो—अपूर्व०

(३७)

१. अब हम अमर भये न मरेंगे,
या कारण मिथ्यात दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे—अब०
२. राग द्वेष जग बन्ध करत है इनका नाश करेंगे,
मर्यो अनन्त काल तै प्राणी सो हम काल हरेंगे—अब०
३. देह विनाशी हूं अविनाशी अपनी गति पकरेंगे
नासी जासी हम थिरवासी चोखे व्है निखरेंगे—अब०
४. मर्यो अनन्त बार बिनु समझ्यो अब सुख दुःख विसरेंगे,
'आनन्दघन' निपट निकट अक्षर दो नहीं सुमरे सो मरेंगे—अब०

(६८)

१. अहो जगत गुरु एक, सुनिये अरज हमारी।
तुम हो दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी ॥

२. इस भव वन वादि में, काल अनन्त गमायो।
भ्रमत चहुं गति मांहि, सुख नहीं दुःख बहु पायो ॥

३. कर्म महारिपु जोर, एक न कान धरेजी।
मन मान्या दुःख देहि काहू सों न टरे जी ॥

४. कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावें।
सुर नर पशु गति मांहि, बहु विधि नांच नचावें ॥

५. प्रभु ! इनके परसंग, भव मांहि बुरेजी।
जे दुःख देखे देव ! तुम सों नांहि दुरे जी ॥

६. एक जन्म की बात, कहि न सकों सुन स्वामी।
तुम अनन्त परजाय, जानत अन्तर जामी ॥

७. मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे।
किया बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे ॥

८. ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निर्बल करि डार्यो।
इन्हीं तुम मुझ मांहि, हे जिन ! अन्तर पार्यो ॥

९. पाप पुण्य की दोई, पांयनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह मांहि, मोहि दियो दुःख भारी ॥

१०. इनको नेक बिगार, मैं कछु नांहि कियो जी।
बिन कारण जगवंद ! बहु विधि बैर लियो जी ॥

११. अब आयो तुम पास, सुनि जिन सुजस तिहारो।
नीति निपुण जग राय ! कीजे न्याय हमारो ॥

१२. दुष्टन देह निकास, साधन को रख लीजे।
विनवें 'भूधरदास' हे प्रभु ! ढील न ...

(६६)

१. इम समकित मन थिर करो, पालो निर अतिचार ।
मनुष्य जन्म छै दोहिलो, भमतां जगत मंझार ॥

२. नर भव आरज कुल तिहां, सुणवी जिनवर वाण ।
होय यथारथ श्रद्धना, चउ अंग दुर्लभ जान ॥

३. आरम्भ परिग्रह दोय ए, तेइस विषय कषाय ।
जब लग पतला ना पड़े, तब लग समकित नाय ॥

४. आत्म, लोक, कर्म, क्रिया, शुद्ध वाद है चार ।
चिंतवतां समकित लहे, जीव जगत मंभार ॥

५. जीव अमूरत शाश्वतो, तीन रत्न सुभाय ।
पर संयोगे ऊपजे, तस विषय कषाय ॥

६. आतम सम छहकाय हैं, दु:ख निर अभिलाष ।
परलोक परवश जाइवो, जिन आगम है साख ॥

७. संपत् विपत् सुखी-दु:खी, मूढ़ 'र चतुर सुजान ।
नाटक कर्मना जाणज्यो, नाना जगत विधान ॥

८ विन कीधां लागे नहीं, कीधां कर्मज होय ।
कर्म कमाया आपणा, तेह थी सुख दु:ख होय ॥

९ जीव अजीव वेहू मिल्या, खीर नीर ने न्याय ।
अज्झत्त गुण ने कारणे, ते थी बन्धन थाय ॥

१०. आस्रव हेतु छे बन्धनो, शुभ–अशुभ दो भेद ।
क्रम थी पुण्य ने पाप छे, मोक्ष तेहनो छेद ॥

११. संवर रोके आवतां, क्षीण तप थी होय ।
तेहनो नाम छे निर्जरा, सुगति कारण दोइ ॥

१२. पहली त्रिक मन धारिये, ज्ञेय अरु बीजी हेय।
तीजी उपादेय जानिये, इण मन समकित सेय ॥
१३. उपशम जेह कषाय नो, तेहनो शम अभिधान।
मुगति पंथ नी चाहना, सो सम्वेग प्रधान ॥
१४. होइ उदास विषय विषै जाणीजो निरवेद।
पर दुःख देखी दुःख–दया, ओ छे चोथो भेद ॥
१५. इह परलोक छतापणो, होइ आस्तिक भाव।
कर्म कर्या तेना फल सही, होइ पुण्य ने पाप ॥
१६. तर्क अगोचर 'सद्दहो', द्रव्य धर्म अधर्म।
केई 'प्रतीतो' युक्ति सों पुण्य–पाप जु कर्म ॥
१७. तप चरित ने रोचवो, कीजे तस अभिलाख।
'श्रद्धा' 'प्रत्यय' 'रुचि' तिहुं, है जिन आगम साख ॥
१८. पंथ, धर्म, जिय, साधु छे सिद्ध सेतर[1] जान।
एह पदारथ जाणिये, 'सण्णा' (संज्ञा) दस विध मान ॥
१९. जाति सुश्रति औधि आदि सों, उपजे बोधि निसर्ग १।
छद्मस्थ जिन उपदेश सों, पावे भविजन वर्ग २ ॥
२०. आदेश गुरुमुख सुन लहे, 'आणारुचि' ३ या होइ।
पढ़तां श्रुत के ऊपजे, 'सूत्र रुचि' है ४ सोय ॥
२१. तेल सलिल के न्याय सों, बोधि बीज को लाह।
ते तुम जांणो 'बीज रुचि' ५, भाखे जिनवर नाह ॥
२२. अर्थ विचारे सूत्र के, 'अभिगम रुचि' ६ सो जान।
सब गुण पर्यव भाव नय, इम विस्तारे ७ मान ॥
२३. 'क्रिया रुचि' ८ क्रिया विषै, उद्यम करतां होई।
चारित्र में उद्यम कियां, 'धर्म रुचि' ९ है सोई ॥

---

१. मार्ग, धर्म, जीव, साधु एवं सिद्ध—इन पांचों के इतर उन्मार्ग, अधर्म अजीव, असाधु एवं असिद्ध—ये दस प्रकार की संज्ञाएं हैं।

२४. जांने कुदर्शण ना ग्रह्यो, जाहि समय प्रवीन।
'संक्षेप रुचि' १० सो जानिये, भाखे बुद्धि-ग्रही

२५. चार अनंतानुबंधिया, मिथ्या-मोहनी मीस।
ए सब समकित को हणे, भाख्यो श्री जगदी

२६. देश हणे सम मोहनी, सपतक एही जान।
क्षय उपसम इनका कहो, मीस उदय प्रमा

२७. उपसम क्षय छे सात नो, क्षय अरु उपसम भेद।
च्यारि अनंतानुबंधिया, निश्चय छे इह छे

२८. दसन एक दुहून को, क्षय - उपसम शेष।
समकित मोहनी उपसमै नियमा ए तिहुं लेख

२९. वेदक में नियमा उदय, होई समकित मोह।
शेष छह प्रकृति उपशमै, अथवा पावे छोह

३०. चार कषाय क्षय हुवै, दंसण दो उपशाम।
अथवा मीसा उपसमै, पंच पावे विराम

३१. ए नव भेद समकित कह्यो, जेह थी शिवसुख थाइ ॥
क्षय उपसम दोय वेद छे, ए ही च्यारै भाई।

३२. शंका १ कंखा २ कर रहित, वितिगिच्छा ३ जी नाहिं।
दिट्ठी अमूढ़ ४ थिरीकरण ५ जिनमत के मांहि।

३३. धर्म विषै उच्छाहना, तस उववूह ६ नाम।
वात्सल्य ७, प्रभावना ८, ए आचार मा ठाम।

३४. शंका संशय ऊपजै, सव - देसे होइ।
सवथी अनाचार देश थी, अतिचार छे सोइ।

३५. धर्म करंतां मन धरे, देवादिक नी भीति।
अथवा लज्जा लोकनी, ए छे शंका रीति।

३६. कंखा परमत वांछवो, सव देखे जो होइ ।
सव थी अनाचार देश थी–अतिचार छे सोइ ॥

३७. सहाय वांछे धर्म में, नर अरु सुर थी कोय ।
लब्ध्यादिक वांछा करे, ए है कंखा जोय ॥

३८. तप चारित्र ना फल विषै वितिगिच्छा संदेह ।
साधु–उपधि मलिन लखि, दुगंछा छे एह ॥

३९. संसार कारज साधवा, जो परजुंजे धर्म ।
सभी अतिचार ऊपजे, समर्मोहनी कर्म ॥

४०. पासत्थादि कुदर्शनी, जेह शिथिलाचार ।
निन्हव जेय असाधु छै, एहनो कर परिहार ॥

४१. एह प्रशंसे – संथवे, अतिचार छे पंच ।
समदृष्टी ! तुम जाणज्यो, ए मति सेवो रंच ॥

४२. क्षण क्षण जो क्रोध करे, धरे अति दीरघ रोष ।
इह – पर जग – जस – वंदना – कारण तप पोष ॥

४३. निमित्त करी अजीविका, एह थी असुरज थाय ।
चार पदे संमोह छे, ते थी समकित जाय ॥

४४. उन्मारग नी देशना, पंथ – विघ्न – सुजान ।
गिरधी भाव विषय तणों, काम भोग निदान ॥

४५. अरिहन्त – धर्म तथा गुरु – संघ अवरणवाद ।
एह थी किल्विषता लहे, मिथ्यामति उत्पाद ॥

४६. अपना गुण पर–औगुणों, भूति कौतुकाकार ।
अभियोगी सुर जे हुवे, ते छे चार प्रकार ॥

४७. कंदर्पी विकथा करै, भण्ड – चेष्टा – जान ।
चपलाई परिहास छै, ते कंदर्पी थान ॥

४८. आरम्भ परिग्रह मोट को, पंचेन्द्रिय नी घात ।
निद्य आहार नरक तणां, हेतू च्यारे वात ॥

४९. माया करै तस गोपवै, कूड़ा देवे आल ।
कूड़ा माषा तोलतां, तिर्यंच बंधे काल ॥

५०. चारित्र दर्शन ज्ञान को, कीजिये अभ्यास ।
संगति कीजै साधुनी, जे छे जगथी उदास ॥

५१. भ्रष्ट कुदर्शन की तजो, संगति ए व्यवहार ।
समकित ना ए जाणज्यो, इम ए चारि प्रकार ॥

५२. अन्यमती तस देवता, चैत्य वंदे नांहि ।
राजा–गण–सुर गुरु – सबल – वृत्ति – छांडी मांहि ॥

५३. न्याय करे न्याय भापही, न्याय को पक्षपात ।
न्याय विचारे मन धरे, लज्जा–नीति की वात ॥

५४. जाको वल्लभ न्याय है, न्याय ही को आचार ।
न्याय ही सों सवही करे, वृत्ति औ' व्यवहार ।

५५. नौ तत्व जान १ सहाय न वंछे, डिगे नहीं देव अदेव डिगाये २ ।
३ दोप बिना जो धरे जिन दर्शन ४ निरनै सब अर्थ करी समझाये ॥

५६. धर्म के राग रंग्यो हिरदे ५ अति धर्म कहे आपस में मिलायें ।
निर्मल चित्त ७ अभंग दुवार ८ अंतेउर नाहि परे घर जायें ॥

५७. पोपव छहु तिथि को करै ९ प्रतिलाभे शुभ साध १० ।
ऐसे समदृष्टि तथा, श्रावक हैं आराध ॥

(७०)

१. उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है ॥ध्रु०॥
जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है वो पावत है ।

२. टुक नींद से अँखियां खोल जरा, ओ गाफिल रब (प्रभु) से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं, रब जागत है तूं सोवत है॥

३. अनजान! भुगत करणी अपनी, ओ पापी! पाप में चैन कहां?
जब पाप की गठड़ी सीस धरी, फिर सीस पकड़ क्यों रोवत है?

४. जो काल करे सो आज ही कर, जो आज करे सो अब करले।
जब चिड़ियन खेती चुगि डारी, फिर पछताये क्या होवत है?

(७१)

१. उठ भोर भई टुक जाग सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु।
अब नींद अविद्या त्याग सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

२. जग जाग उठा तूं सोता है, अनमोल समय यह खोता है।
तूं काहे प्रमादी होता है, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

३. यह समय नहीं है सोने का, है वक्त पाप–मल धोने का।
अरु सावधान चित होने का, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

४. तूं कौन कहां से आया है, अब गमन कहां मन लाया है।
टुक सोच यह अवसर पाया है, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

६. रे चेतन चतुर हिसाव लगा, क्या खाया खरचा लाभ हुआ।
निज ज्ञान जमा तूं संभाल सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

५. गति चार चौरासी लाख रुला, यह कठिन कठिन शिवराह मिला।
अब भूल कुमार्ग विषे मत जा. भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु॥

(७२)

एकज ए अभिलाष – मम हृदये तव वास—एकज०

१. ना चाहूं जग कीरति मेवा, ना स्वर्ग निवास।
सिद्धि मिले, भले जीवन वलि हो, ए अन्तर नी आस—एकज०

२. सफल विफलनी ना मुझ परवाह, परवाह गुरुजन सेवा।
महा आंधी मां भले रहूं निरन्तर, तुझ चरणें विश्वास—एकज०

(७३)

१. एक सांस खाली मत खोय रे जगत् वीच,
कीचड़ कलंक अंग धोयले तो धोयले ।।टेर।।
२. उर अन्धियार पाप पूर को भरियो है जामें।
ज्ञान की चिराग चित्त जोय ले तो जोय ले—एक सांस०
३. मानुष जनम ऐसो फेर न मिलेगो मूढ़।
परम प्रभु से प्यारे होय ले तो होय ले—एक सांस०
४. क्षण भंगुर देह या में जनम सुवारवो है।
विजली के झलके मोती पोय ले तो पोय ले—एक सांस०

(७४)

१. ए जी ! थांने आई अनादि की नींद, जरा टुक जोवो तो सही।
ए जी ! थांने सुमति कहे कर जोड़, सन्मुख होओ तो सही–एजी०
२. मोह मद छक रही नींद निवारणी, टोओ तो सही।
अजी जरा ! ज्ञान शुद्धोदक छांट, अंखियन पट खोलो तो सही–एजी०
३. काल अनन्त दुःख देख पिया ! क्यों फिर मोहो छो सही।
अजी ! इन कुमति सखियन संग वैठ वैठ, पेठ क्यों खोओ छो सही–एजी०
४. क्रोध कपट मद लोभ, विषयवश होओ छो सही।
अजी यो ! चतुर्गति को वीज, चतुरां ! किम वोओ छो सही–एजी०
५. सत्य – मत – मुक्ता – माल प्रेम धर पोओ तो सही।
अजी ! या निज-सुख-सेज 'सुजाण' सुगुण मन सोओ तो सही–एजी०

(७५)

करलो श्रुतवाणी का पाठ, भविक जन मन मल हरने को ।।टेर।।

१. विन स्वाध्याय ज्ञान नहीं होगा ज्योति जगाने को।
राग द्वेष की गांठ गले नहीं बोधि मिलाने को ।।
२. जीवादिक स्वाध्याय से जानो करणी करने को।
बंध मोक्ष का ज्ञान करो भव भ्रमण मिटाने को ।।
३. तुंगियापुर में स्थविर पधारे ज्ञान सुनाने को।
सुज्ञ उपासक मिलकर पूंछे सुर पद पाने को ।।
४. स्थविरों के उत्तर थे सब जन मन हर्षाने को।
गौतम पूछे स्थविर समर्थ है उत्तर देने को ।।
५. जिनवाणी का सदा सहारा श्रद्धा रखने को।
बिन स्वाध्याय न संगत होगी भव दुःख हरने को ।।
६. सुबुद्धि ने भूप सुधारा भव जल तिरने को।
पुद्गल परिणति को समझा कर धर्म दिपाने को ।।
७. नित स्वाध्याय करो मन लगाकर शक्ति बढ़ाने को।
'गज मुनि' चमत्कार कर देखो निज बल पाने को ।।

(७६)

करलो सामायिक रो साधन जीवन उज्वल होवेला ।।टेर।।

१. तन का मैल हटाने खातिर नित प्रति नहावेला।
मन पर मैल चहुं ओर जमा है कैसे धोवेला—करलो०
२. बाल्यकाल में जीवन देखो दोष न पावेला।
मोहमाया का संग कियां से दाग लगावेला—करलो०
३. ज्ञान गंगा ने क्रिया धुलाई जो कोई धोवेला।
काम क्रोध मद लोभ दाग को दूर हटावेला—करलो०

४. सत्संगत और शान्त स्थान दोष बचावेला।
फिर सामायिक साधन करने शुद्धि मिलावेला—करलो०

५. दोय घड़ी निज रूप रमणकर जग विसरावेला।
धर्मध्यान में लीन होय चेतन सुख पावेला—करलो०

६. सामायिक से जीवन सुधरे जो अपनावेला।
निज सुधार से देश जाति सुधरी हो जावेला—करलो०

७. घिसत घिसत प्रतिदिन रस्सी भी शिला घिसावेला।
करत करत अभ्यास मोह का जोर मिटावेला—करलो०

(७७)

१. कैसे करि केतकी कणर एक कह्यो जाय।
आक-दूध गाय-दूध अन्तर घणेरो है॥

२. रीरी होत पीरी पण होंस करे कंचन की।
कहां काग-वाणी कहां कोयल की टेर है॥

३. कहां भानु तेज कहां आगियो विचारो कहां।
पूनम उजियारो कहां अमावस अंधेरो है॥

४. पक्ष छोड़ि पारखी निहारो नेक नीके करी।
जैन वैन और वैन अन्तर घणेरो है॥

५. वीतराग वाणी सांची मुक्ति की निसरणी जाणी।
सुकृत की खानि ज्ञानी मुख से वखाणी है॥

६. इनको आराध के तिरे हैं अनन्त जीव।
ताको ही जहाज जान श्रद्धा मन आणी है॥

७. सरधा है सार धार सरधा से खेवो पार।
श्रद्धा बिन जीव ख्वार निश्चै कर मानी है॥

८. वाणी तो घणेरी पर वीतराग तुल्य नहीं।
इसके सिवाय और छोरों-सी कहानी है ॥

(७८)

घणो सुख पावेला, जो गुरु वचनों पर प्रीति बढ़ावेला ॥टेर॥
१. विनयशील की कैसी महिमा, मूल सूत्र बतलावेला।
वचन प्रमाण करे सो जन सुख सम्पति पावेला ॥
२. गुरु सेवा और आज्ञाधारी, शिक्षा खूब मिलावेला।
जलपाये तरुवर सम वे, जग में सरसावेला ॥
३. वचन प्रमाणे जो नर चाले, चिन्ता दूर भगावेला।
आपमती आरति नित भोगे, धोखा खावेला ॥
४. एकलव्य लखि चकित पांडुसुत, मन में सोच करावेला।
कहा गुरु से हाल भील की भक्ति बतावेला ॥
५. देख भक्ति उस भील युवा की, वन देवी खुश होवेला।
बिना अंगूठे बाण चले यो वर दे जावेला ॥
६. गुरु कारीगर के सम जग में वचन टंक जो खावेला।
पत्थर से प्रतिमा जिम वो नर महिमा पावेला ॥
७. कृपा दृष्टि गुरुदेव की मुझ पर ज्ञान शांति बरसावेला।
'गजेन्द्र' गुरु महिमा का नहीं कोई पार मिलावेला ॥

(७९)

१. चेतन ! अब मोहि दर्शन दीजे।
तुम दर्शन शिवसुख पामीजे, तुम दर्शन भव छीजे ॥ध्रु०॥
२. तुम कारन तप संयम किरिया, कहो कहां लौं कीजै ?
तुम दर्शन बिनु सब या झूठी, अन्तर चित्त न भीजै ॥

(८०)

चेतन रे ! तूं ध्यान आरत क्यूं ध्यावे, हां रे नाहक कर्म संचावे--

१. जो जो भगवन्त भाव देखिया सो सो ही बरतावै।
घटै बढै नहीं रंचहु तामें, तो काहे तूं मन डोलावे--

२. आरत ध्यान ज्यों चिन्ता अग्नि, उपजत सहू विणसावै।
शोकातुर बीते दिन रैणी, तो धर्म ध्यान घट जावे-

३. सुख सूं निद्रा आत न रातन, अन्न उदक नहिं भावै।
पहिरण ओढण चित्त नहीं चावे, नहीं राग न रंग सुहावे-

४. भुगत्यां बिन छूटै नहिं कबहूं, अशुभ उदय जब आवै।
साहूकार शिरोमणि सो ही, जो हर्ष सुं कर्ज चुकावै-

५. सुख न रहे तो दुःख किम रहसी, यह भी ख्यात् गुजर जावै।
कर्म बन्ध भुगतण सही पड़सी, तो आतम ने डंडावै-

६. प्रभु सुमरण अरु तपस्या करतां, दुष्कृत रज झड़ जावै
'ज्येष्ठ' कहे समता रस पीतां, तुरत ही आनन्द पावै-

(८१)

१. वृषभ चिह्न ऋषभ को, अजित को गजराज।
संभव को अश्व, अभिनन्दन को कपि है।।
सुमति प्रभु को क्रौंच, कमल पद्म प्रभुजी को।
स्वस्तिक सुपार्श्व अरु, चन्द्र चन्द्रप्रभ को।।

२. मकर सुविधि को चिह्न, शीतल को है श्रीवत्स।
श्रेयांस को गेंडा, वासुपूज्य को महिष है।।
विमल वराह, श्येन अनन्त, वज्र धर्मनाथ।
शान्ति को हरिण, कुंथुनाथजी को छाग है।।

३. नन्द्यावर्त अरजी को, मल्ली को कलश पुनि ।
कूर्म मुनिसुव्रत, नीलोत्पल नमि जिन को ।।
शंख नेमिनाथजी को, पारस को सर्पराज ।
'गजसिंह' कहे चिह्न, सिंह महावीर को ।।

(८२)

१. जग उठरे ३ मारा चतुर पांवणा अब थारी गाड़ी हकाचा में ।
पल पल में थारी ऊमर जावे–मौत फागती आवे जीवड़ा–अब०
२. मोह नींद रे वश में सोग्यो भूल आपणो पंथ जीवड़ा–अब०
बचपन खेलण मांहीं गंवायो जोवन में मद छायो जीवड़ा–अब०
३. पर की निन्दा कर कर आपणा घर में कचरो लायो जीवड़ा–अब०
मुनियांरो उपदेश न मान्यो धरम ध्यान नहीं आयो जीवड़ा–अब०
४. ज्ञान्यां रो उपदेश न धार्यो धरम ध्यान नहीं ध्यायो जीवड़ा–अब०
बीती सो तो बीत गई रे अब तूं चेत चेत जीवड़ा–अब०
५. पाप करम सब भरम छोड़ कर धरम सुं नेह लगा जीवड़ा–अब०
प्रभु सुमिरण है सब दुःख नासी 'कुमुद' सदा सुखदाई जीवड़ा–अब०

(८३)

१. जगत में, बड़ो समझ को आंटो, बड़ो समझ को आंटो ।।टेर।।
सुण सुण धर्म शर्म नहीं उपजत, विषम कर्म को कांटो ।
२. संवर त्याग बटोरत आश्रव कष्ट करे उफराटो ।
मन वच काय कमावत सावज्ज पड़ रही भूल निराटो–जगत०
३. जग दुःख टान्त हिये सुख माने रूयो ज्ञान गुण घाटो ।
आपो भूल पड्यो इन्द्रिय वश मिटे न मोह को फांटो–जगत०
४. श्री जिन वचन दिवाकर प्रगट्या, उड्यो भर्म को टाटो ।
'रतनचन्द' आनंद भयो अब, लख्यो सार रस खाटो–जगत०

(८४)

१. जिनदेव ! तेरे चरणों में मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास हो।
जीवन-समर में हे प्रभो ! मुझे एक तेरी आस हो॥
२. कर्त्तव्य-पथ से जो डिगाने विघ्न-गण आवें मुझे।
सन्तोष, भक्ति और दया का मन्त्र मेरे पास हो॥
३. संसार-सागर में बहा दूं प्रेम की मन्दाकिनी।
दिल में तड़प हो प्रेम की और प्रेम जल की प्यास हो॥
४. निज भाव भाषा देश का गौरव मुझे दिन रात हो।
निज धर्म हित यह प्राण हों और मन कभी न निराश हो॥
५. संसार-सागर में न भटके नाव मेरी हे प्रभो।
मैं खुद खिवैया बन सकूं वह शक्ति मेरे पास हो॥
६. मैं बालपन में ब्रह्मचारी, रह सभी विद्या पढ़ूं।
यौवन दशा में बन के श्रावक अन्त में सन्यास हो॥
७. यह आत्मा ही बन सके ऐ राम ! खुद परमात्मा।
हे नाथ ! मेरी आत्मा का अन्त मोक्ष-निवास हो॥

(८५)

१. जीवन उन्नत करना चाहो तो सामायिक साधन कर लो।
आकुलता से बचना चाहो तो—सा०
२. तन धन परिजन सब सुपने हैं, नश्वर जग में नहीं अपने हैं।
अविनाशी सद्गुण पाना हो तो—सा०
३. चेतन निज घर को भूल रहा, पर घर माया में झूल रहा।
सद् चिन् आनन्द को पाना हो तो—सा०
४. विषयों में निज गुण भूलो मत, अब काम क्रोध में मत झूलो।
समता के सर में नहाना हो तो—सा०

५. तन पुष्टि हित व्यायाम चला, मन पोषण को शुभ ध्यान भला।
आध्यात्मिक बल पाना चाहो तो—सा०

६. सब जग जीवों में बन्धु भाव, अपना लो तज के वैर भाव।
सब जन के हित में सुख मानो तो—सा०

७. निर्व्यसनी-हों प्रामाणिक-हों, धोखा न किसी जन के संग हो।
संसार में पूजा पाना हो तो—सा०

८. स्वाध्याय सामायिक संघ बने, सब जन सुनीति के भक्त बनें।
नर लोक में स्वर्ग बसाना हो तो—सा०

(८६)

१. जीवन चरित महापुरुषों के हमें नसीहत देते हैं,
हम भी अपना अपना जीवन स्वच्छ रम्य कर सकते हैं।

२. हमें चाहिए हम भी अपने बना जायं पद चिह्न ललाम,
इस धरती की रेती पर जो, वक्त पड़े आवें कुछ काम।

३. देख देख जिनको उत्साहित, हों पुनि वे मानव मतिधर,
जिनकी नष्ट हुई हो नौका, चट्टानों से टकराकर।

४. लाख लाख संकट सहकर भी, फिर भी हिम्मत बांधें वे,
जाकर मार्ग मार्ग पर अपना, 'गिरिधर' कारज साधें वे।

(८७)

१. जो केश काले भंवर थे, गाले रुई के बन गये।
थे दांत हाथीदांत सम, मजबूत गिरने लग गये।।

२. आंखें चुरा आंखें गई हैं, दृष्टि मन्दी पड़ गई।
मुख हो गया है खोखला, तृष्णा अधिक है बढ़ गई

३. नहिं कान देते काम अब, ऊंचा बहुत सुनने लगे।
पग डगमगाते चल रहे हैं, हाथ भी हिलने लगे॥

४. काया गली, झुर्री पड़ी, हड्डी हुई है खोखली।
ज्यों जौंक चिन्ता-सर्पिणीने रक्त चर्बी शोष ली॥

५. इन्द्रियां बलहीन हैं, धनु सम कमर है झुक गई।
काया हुई बूढ़ी मगर, आशा नहीं बुड्ढी हुई॥

६. यमदूत तुमको दे रहे हैं, कूच की यह सूचना।
आश्चर्य है आश्चर्य अति, होती नहीं क्यों चेतना॥
आश्चर्य है अब भी तुम्हें, होती नहीं क्यों चेतना॥

(८८)

१. जो दस बीस पचास भये, शत होय हजार तो लाख मंगेगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब भये तो, धरापति होने की चाह जागेगी॥

२. स्वर्ग पाताल को राज मिले, तृष्णा तबहूं अति आगे बढ़ेगी।
'सुन्दर' एक संतोष बिना, शठ! तेरी तो भूख कभी न भगेगी॥

(८९)

१. जोबनियां की मौजां फौजां जाय नगाड़ा देती रे,
चेत! चेत रे! चेत! चतुर नर! चिड़ियां चुग गई खेती रे—जोब०

२. छिनक छिनक में आयुष छीजैं क्यों कड़िया जल एती रे,
ओछा जीवत कारण चेतन! पड़े मुगत सूं छेती रे—जोब०

३. मात पिता त्रिया सुत बन्धव मिली सम्पदा एती रे,
पलक पलक में सघली पलटे ज्यों जल भरियो रेती रे—जोब०

४. काल की फौज चढ़ी शिर ऊपर फिरे लपेटा लेती रे,
अविचल सुख की चाह हुए तो प्रीति करो प्रभु सेती रे—जोब०

(६२)

१. दया सुखों नी वेलड़ी, दया सुखों नी खान।
अनन्ता जीव मुक्ति गया, दया तणां फल जान॥

२. हिंसा दुःखों नी वेलड़ी, हिंसा दुःखों नी खान।
अनन्ता जीव नरके गया, हिंसा तणा फल जान॥

३. चेतो रे ! भवी प्राणियां, ओ संसार असार।
स्थिरता कोई दीसे नहीं, धन जौवन परिवार॥

४. धर्म करो तमे प्राणियां, धर्म थकी सुख होय।
धर्म करंतां जीव ने, दुखिया न दीठा कोय॥

५. जीव दया पाली सही, पाली सही छ काय।
वस्ता घरनो पाहुणो, मीठा भोजन खाय॥

६. जीव दया पाली नहीं, पाली नहीं छ काय।
सूना घरनो पाहुणो, जिम आयो तिम जाय॥

७. रत्न पड्युं छे बाजारमां, रह्यो गरद लिपटाय।
मूरख जाणे कांकरो, चतुरां लियो उठाय॥

८. चौहटा केरा वजारमां, लांबा पान खिजूर।
चढ़े सो चाखे प्रेम रस, पड़े सो चकना चूर॥

९. ए शीखामण सांची कही, सर्व ने हितकार।
कांइक दया करुणा राखजो, थांने सांभल्या नुं परिमाण॥

१०. खरो मारग वीतरागनो, सूक्ष्म जेहना भेद।
शाणा थईने श्रद्धजो, मनमां राखि उमेद॥

११. डिगाव्या डिगजो मती, निश्चल राखजो मन।
हिंसाथी रहेजो वेगला, कहेवाशो धन धन॥

१५. परमाधामी ने भवे, दीधा नारकी दुःख ।
छेदन भेदन वेदना, ताड़न अतितिक्ख — ते०

१६. कुंभार ने भवे मैं घणा, नीभाह पचाव्या ।
तेली भवे तिल पीलिया, पापे पिण्ड भराव्या — ते०

१७. हाली-भवे हल खेड़िया, फोड़्या पृथ्वी ना पेट ।
मूड़ निनाण किया घणां, दीधी बलदां चपेट — ते०

१८. माली भवे रूंख रोपिया, नाना विध वृक्ष ।
मूल पत्र फल लता, फूललाग्या पाप ज लक्ष — ते०

१९. अधोवाड़या ने भवे, भरिया अधिका भार ।
पोठी पूठे कीड़ा पड़्या दया न आणी लिगार — ते०

२०. छीपा ने भवे छेतर्या कीधा रंगण पास ।
अग्नि आरंभ किया घणां, धातुवाद अभ्यास — ते०

२१. शूर पणे रण झूझता, मार्या माणस वृन्द ।
मदिरा मांस माखण भख्या खाधा मूल ने कन्द — ते०

२२. खाण खणावी धातुनी, सर पाणी उलीच्या ।
आरम्भ कीधा अति घणा, पोते पापज संच्या — ते०

२३. अङ्गार कर्म किया वली, वन में दव दीधा ।
सौगन्ध खाई वीतराग नी, कूड़ा दोपज दीधा — ते०

२४. बिल्ली भवे उन्दर गिल्या, गिलोरी हत्यारी ।
मूढ़ गँवार तणे भवे, मैं जूं लीखां मारी — ते०

२५. भड़भूंजा तणे भवे, एकेन्द्रिय जीव ।
जुवार चणा गेहूं सेकिया, पाड़ंता रीव — ते०

२६. खांडन पीसण गारना, किधा आरम्भ अनेक ।
रांधण इंधण अग्नि ना, कीधा पाप उद्वेग — ते०

२७. विकथा चार कीधी वली, सेव्या पंच प्रमाद ।
इष्ट वियोग पड़ाविया, रोवण विख वाद — ते०

२८. साधू अने श्रावक तणां, व्रत लेई ने भांग्या ।
मूल अने उत्तर गुण तणां, मुझ दूषण लाग्या – ते०

२९. सांप विच्छू सिंह चीतरा, सिकरा ने समली (चील)।
हिंसक जीव तणे भवे, हिंसा कीधी सबली – ते०

३०. सुवावड़ी दूषण घणा, वली गर्भ गलाव्या ।
जीवाणी ढोली घणी, शील व्रत भंजाव्या – ते०

३१. भव अनन्त भमतां थकां, कीधो देह सम्बन्ध ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबन्ध – ते०

३२. भव अनन्त भमतां थकां, कीधो परिग्रह सम्बन्ध ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबंध – ते०

३३. भव अनन्त भमतां थकां, कीधा कुटुम्ब सम्बन्ध ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, तिणशुं प्रतिबंध – ते०

३४. इण विध इह भव पर भवे, कीधा पाप अखत्र ।
त्रिविध त्रिविध करि वोसिरूं, करूं जन्म पवित्र – ते०

३५. इण विध यह आराधना, भावे करसे जेह ।
'समय सुन्दर' कहे पाप थी, वली छूट से तेह – ते०

(१४२)

वृहदालोयणा

१. सिद्ध श्री परमातमा, अरिगंजन अरिहंत ।
इष्टदेव वंदूं सदा, भयभंजन भगवंत ।।

२. अरिहंत सिद्ध समरूं सदा, आचारज उवज्झाय ।
साधु सकल के चरण कूं, वंदूं शीश नमाय ।।

३. शासन नायक सुमरिये, भगवंत वीर जिनन्द ।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ।।

४. अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वांछित फल दातार ।।
५. श्री गुरुदेव प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध।
ज्यों जल बरसत वेलि तरु, फूल फलन की वृद्ध ।।
६. पंच परमेष्ठी देवको, भजनपूर पहिचान।
कर्म अरि भाजे सभी, होवे परम कल्याण ।।
७. श्री जिनयुगपद कमल में, मुझ मन भमर वसाय।
कब ऊगे वो दिन करू, श्रीमुख दर्शन पाय ।।
८. प्रणामी पदपंकज भणी, अरिगजन अरिहंत।
कथन करूँ अब जीव को, किंचित मुझ विरतंत ।।
९. आरंभ विषय कषाय वश, भमियो काल अनंत।
लख चौरासी योनि से, अब तारो भगवंत ।।
१०. देव गुरु धर्म सूत्र मे, नव तत्वादिक जोय।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कडं मोय ।।
११. मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, भरियो रोग अथाग।
वैद्यराज गुरु शरण से, औषध ज्ञान वैराग ।।
१२. जे मैं जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार।
प्रभो ! तुमारी साख से, बारंबार धिक्कार ।।
१३. बुरा बुरा सब को कहूं, बुरा न दीसे कोय।
जो घट शोधूँ आपणो, तो मोसूं[1] बुरा न कोय ।।
१४. कहवा में आवे नहीं, अवगुण भरचा अनंत।
लिखवा में क्यों कर लिखूं, जानो श्री भगवंत ।।
१५. करुणानिधि करुणा करी, कठिन कर्म मोय छेद।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रंथि भेद[2] ।।

---

१ मेरे से, २ कर्मों की गांठ को तोड़ना।

१६. पतित उधारण नाथजी, अपनो विरुद विचार।
भूल चूक सब माहरी, खमिये वारंवार॥

१७. माफ करो सब माहरां, आज तलक ना दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील संतोष॥

१८. आतम निंदा शुद्ध भणी, गुणवंत वंदन भाव।
रागद्वेष पतला करी, सब से खिमत खिमाव॥

१६. छूटूँ पिछला पाप से, नवा न बांधू कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय॥

२०. परिग्रह ममता तजि करी, पंच महाव्रत धार।
अंत समय आलोयणा, करूँ संथारो सार॥

२१. तीन मनोरथ[1] ए कह्या, जो ध्यावे[2] नित्य मन्न।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिवसुख धन्न॥

२२. अरिहंत देव निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म।
केवलिभाषित शासतर, यही जैनमत मर्म॥

२३. आरंभ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित व्रत धार।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार॥

२४. खिण[3] निकमो रहणो नहीं करणो आतम काम।
भणणो गुणणो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम[4]॥

२५. अरिहंत सिद्ध सब साधुजी, जिन आज्ञा धर्मसार।
मंगलिक उत्तम सदा, निश्चय शरणा चार॥

२६. घड़ी घड़ी पल पल सदा, प्रभु सुमिरण को चाव।
नरभव सफलो जो करे, दान शील तप भाव॥

—०—

पर आज के भौतिक तमसाच्छन्न युग में प्रार्थना – भजन आदि को हेय वस्तु – साधारण, कम पढ़े-लिखे लोगों की वस्तु गिना जाने लगा है। यहाँ तक कि स्कूलों में तो इसका थोड़ा चलन है, पर कॉलेज के विद्यार्थी इन्हें अपनी शान के विरुद्ध समझने लगे हैं।

यह मैकाले की शिक्षा पद्धति की देन है। इसने समाज के नैतिक एवं आत्मिक जीवन के विकास को ही अवरुद्ध कर दिया है। केवल बुद्धिवाद एवं भौतिक दृष्टिकोण ही बचा रह गया है, जो मनुष्य को मनुष्यत्व से भी गिरा रहा है।

अतः धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, नैतिक, बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रार्थना, भजन आदि को जीवन का अनिवार्य अंग बनाना होगा। ये नैतिक एवं आत्मिक बल प्राप्त करने के अजस्र स्रोत हैं।

•

आवरण : पारस भन्साली